नगीने

[चौदह कहानियों का संग्रह]

सुदर्शन

वोरा ऐंड कंपनी पब्लिशर्ज़ लिमिटेड
३ राउंड बिल्डिंग कालवादेवी रोड बम्बई २

भूमिका

जो चीज जितनी सादा होती है, उसकी परिभाषा करना उतना ही मुश्किल होता है। कहानी बड़ी सादा चीज है। कहानी क्या है, यह दस बारह बरसका बच्चा भी समझता है। मगर कहानी की परिभाषा क्या है ? कहानीका नपा–तुला चौखटा क्या है, जिसके अंदर वह जड़ी रहती है ? कहानी की रूपरेखा क्या है, जिसके अंदर वह घिरी रहती है ? यह कहना इतना आसान नहीं। एक आम आदमी कहेगा—कहानी......एक तरह की...मेरा मतलब है कहानी. यह तो हर कोई, जानता है, कि कहानी क्या है ? कहानी कहानी है।

अंगरेज़ी लेखक मिस्टर जे० ए० हैमरटन (J. A. Hamerton) ने Masterpieces Libraries of Short Stories में लिखा है, कि कहानी किसी घटनाके सुन्दर और प्रभावशाली वर्णन का नाम है। Jack London ने कहा है, कि कहानी वह घटना है, जिसमें इकेहरी उलझन और सुलझन हो। अगर उलझनें ज्यादा होंगी और घटना गुथीली होगी, तो वह कहानी न रहेगी उपन्यास बन जाएगा। एक और लेखक ने कहा है कि कहानी किसी दिलचस्प वाक़या की हूबहू तस्वीर है। इन्हीं बातों को मैं मिलाकर और फैलाकर यूं कहूंगा, कि कहानी वह घटना है, जिसमे सिलसिला हो, मनोरंजन हो, प्रभाव हो।

मगर अच्छी कहानी कौन सी हो सकती है ? कुछ जमाना गुजरा, एक अख़बार ने इस सवालपर अपने पाठकों से राएं मांगीं थीं। किसी साहब ने लिखा था, अच्छी कहानी वह है, जिसमें मनोरंजन हो। किसी ने लिखा था, अच्छी कहानी वह है जिसमें शिक्षा हो। किसी ने लिखा था, अच्छी कहानी वह है जिसमें सत्य हो। मगर सबसे अच्छा जवाब यह समझा गया था, कि अच्छी कहानी वह है, जो कहानी हो, पर कहानी मालूम न हो, और पाठक उसमे उलझकर रह जाए। पढ़ने वाला यह न समझे, कि उसने कोई कहानी पढ़ी है, बल्कि वह यह समझे, कि उसने कोई घटना पढ़ी है। पढ़ने वाला यह न समझे, कि उसने ऐसी बात पढ़ी है, जो हमारी दुनियामें नहीं होती, बल्कि वह यह समझे, कि उसने कोई सच्ची मगर दिलचस्प ख़बर सुनी है।

या यूं कहिए कि अच्छी कहानी वह है, जो काल्पनिक होते हुए भी अपना आधार सत्य पर रखती है, या जिसकी जड़ें ख्वाब और ख़यालमें न हों, बल्कि इसी दुनिया में हों। दूसरे शब्दो में अच्छी कहानी दुनियाकी साधारण घटनाओं में से चुनी हुई हर वह घटना है, जिससे पाठक का मनोरंजन हो सकता हो। हां यह जरूर है, कि कहानी लेखक के पास एक चौखटा हो, और वह अपनी चुनी और छांटी हुई घटना को उस चौखटे में बिठा सकने की ताक़त रखता हो। जिस तरह Landscape दुनियामें क़दम क़दम पर फैले हुए हैं, जरूरत ऐसी आंखकी है, जो अपनी पसंद के Landscape को आसपास की चीजो से अलग कर सके, और उस के गिर्द घेरा डाल सके।

फिर एक ही चीजको अलग अलग जगह से देखा जाए, तो उसकी शक्ल-सूरत ही बदल जाती है। वही झोंपड़ा हो, वही पेड़ हो, वही झरना हो। हो सकता है, कि एक चित्रकार उसका चित्र एक

जगह (Angle) से ले, और उसमें जरा भी खूबसूरती न आए, और उसी समय दूसरा चित्रकार दस गज के फासिले पर जाकर उसी चीज़का चित्र उतारे, और तस्वीर ऐसी खूबसूरत बने, कि जो देखे, वह देखता ही रह जाए। कहानी की दुनियामें यह जगह की अदला बदली लेखक का दृष्टिकोण (नुक़्ता–निगाह) है। एक ही चीजको दो लेखक अपने अपने दृष्टिकोण से देखते हैं, और उनकी कृतियों में आकाश–पाताल का अंतर पड़ जाता है।

इसका मतलब यह है कि पुराने जमाने में तलिस्मी कहानियों के लेखकों को अपनी कहानियों का मसाला लेने के लिए परिस्तान और जादूपरी में जाने की ज़रूरत थी, मगर आजकल के लेखक को अपनी कहानी का मसाला ढूंडने के लिए कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं, न अपना दिमाग़ खुरचने और बाल नोचने की ज़रूरत है। कहानियां हर जगह बिखरी हुई हैं। जरूरत देखने वाली आंख और लिखने वाले कलम की है। फिर हर शहर के हर बाज़ार में, और हर सड़क के हर मोड़पर कहानियां हैं। और इतना ही नहीं, जिसके पास आंख और क़लम है, उसके लिए हवा में भी कहानियां हैं। उसने एक आवाज़ सुनी, और कहानीका प्लाट सामने आ गया। उसने दो पंछी उड़ते हुए देखे, और उसे कहानी का प्लाट मिल गया। उसने एक ख़बर पढ़ी, और उसके सामने एक कहानी आकर खडी हो गई।

माहीम–बम्बई
१ मार्च १९४७

सुदर्शन

कहानियां

कविका चुनाव

[१]

चांद और सूरजके प्रिय महाराजाने अपने नौजवान मंत्रीसे कहा- "हमें अपने दरबारके लिए एक कविकी ज़रूरत है, जो सचमुच कवि हो।"

दूसरे दिन नौजवान मंत्रीने नगरमें मुनादी करा दी। तीसरे दिन एक हज़ार एक आदमी मंत्रीके महलके नीचे खड़े थे, और कहते थे, हम सब कवि हैं। मंत्रीने इक्कीस दिनोंमें उन सबकी कविताएं सुनीं और देखा कि वह सबकी सब सुन्दर शब्दों और रसीले भावोंसे भरी थीं और उनमें मधुकी मिठास थी, और यौवनकी शोभा थी, और मदभरी उपमाएं थीं, और मनको मोह लेनेवाले अलंकार थे।

मगर उनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है, नौजवान मंत्री इसका फ़ैसला न कर सका। उसने एक दिन सोचा, दो दिन सोचा, तीन दिन सोचा, चौथे दिन उसने फूलकी पंखुरियोंके काग़ज़पर सुनहरे रंगसे एक हज़ार एक कवियोंके नाम लिखे, और यह सुनाम-सूची महाराजकी सेवा में उपस्थित कर दी।

महाराजको हैरानी हुई। बोले—"क्या यह सब कवि हैं?"

मंत्रीने विनयसे सिर झुकाया, और धीरेसे जवाब दिया—"मैंने उनकी कृतियां सुनी हैं, और इसके बाद यह नामावली तैयार की है। मगर हमें एक कविकी ज़रूरत है, और यह एक हजार एक हैं। मैं चुनाव नहीं कर सका।"

महाराजाने एक घन्टा विचार किया, दो घंटे विचार किया, तीन घंटे विचार किया, चौथे घंटे आज्ञा दी—"इन सबको क़ैद कर दो, इनसे कोल्हू चलवाओ, और हुक्म दे दो, कि अबसे जो आदमी कविता करेगा, उसे हमारे शहरका सबसे बलवान आदमी कोड़े मार मारकर जानसे मार डालेगा।"

मंत्रीने आज्ञाका पालन किया--अब वहां एक भी कवि न था, न कोई काव्यकी चर्चा करता था। लोग उन अभागोंके संकटकी कहानियां सुनते थे, और उनके हालपर अफ़सोस करते थे।

[२]

छै महीने बाद महाराज एक हज़ार एक कवियोंके क़ैदख़ानेमें गए, और उन सबकी तलाशी की आज्ञा दी और एक हज़ार एक कवि-

योंमेंसे एक सौ एक ऐसे निकले, जिन्होंने बंदी गृहकी कड़ी यातना-ओंके बीचमें रहते हुए भी--रातके समय, जाग जागकर, पहरेदारोंसे छुपा छुपाकर कविता की थी, और यह न सोचा था, कि अगर महा-राजको उनके इस अपराध (?) का पता लग गया, तो उनका क्रोध जाग उठेगा, और इस राज्यका सबसे बलवान आदमी उन्हें कोड़े मार मार कर जान से मार डालेगा।

महाराजने अपने मंत्रीसे कहा "तुमने देखा! यह नौ सो आदमी कवि न थे, नामके भूखे थे। इनको छै छै महीनेकी तन्ख़ाह देकर विदा कर दो। और यह एक सौ एक आदमी किसी हद तक कवि है। इनको रहनेके लिए हमारा मोर-महल दे दो। और देखो, इन्हे किसी तरह की तकलीफ न हो!"

मंत्रीने ऐसा ही किया। अब यह कवि अच्छे कपड़े पहनते थे अच्छे भोजन खाते थे, और रात दिन रासरंगमें लीन रहते थे। लोग उनके ऐश-आराम की कहानियां सुनते थे, और अपने दुर्भाग्यपर ठंढी आहें भरते थे।

छै महीने बाद महाराज अपने मंत्रीको साथ लेकर एक बार फिर एक सौ एक कवियोंके मोर-महलमें गए, और उन सबको अपने सामने बुलाकर बोले– "तुमने बेपरवाईके छे महीनों में क्या कुछ कहा है? हम सुनना चाहतें हैं।"

एक सौ एक आराम दासोंमेंसे सिर्फ़ एक ऐसा था, जिसने मोर-महलकी इन्द्र सभाओंमें कोई भाग न लिया था और अपने मनके उद्-गारोंको शब्दोंमें बांधता रहा था। दूसरे शराब पीते थे, और झूमते थे,

वह एकान्तमें बैठकर आप ही अपनी कविताएं पढ़ता था, आप ही खुश होता था। जैसे जंगलमें मोर आप ही नाचता है, आप ही देखकर खुश होता है।

चांद और सूरजके प्यारे महाराजने अपने नौजवान मंत्रीसे कहा—"यह एक सौ आदमी भी कवि न थे, आरामके भूखे थे। जब यह क़ैद थे, इनकी आंखें अपनी दुर्दशापर रोतीं थीं, और चूंकि उस वक़्त इनका जीवन, जीवनकी बहारोंसे ख़ाली, था इसलिए उन दिनों इन्हें अपना जीवन प्यारा न था। उस समय इन्होंने कविता की, और उसमें अपने भाग्यके अन्धेरे, और अन्धेरे के भाग्यका रोना रोया। मगर जब वे दिन बीत गए, और जब वे काली घड़ियां गुज़र गईं, तो इन्हें काव्य और कल्पनाकी कला भी भूल गई। यह दुःखके दिनोंके कवि हैं, सुखके समयके कलाकार नहीं। इनको धक्के देकर महलसे निकाल दो।"

[२]

इसके बाद महाराजने उस साधुस्वभाव, बेपरवा आदमीकी तरफ़ इशारा करके कहा—"यह सच्चा कवि है, जिसके लिए दुःख और सुख दोनों एक बराबर हैं। यह दुःख की रातमें भी कविता करता है, यह सुखके प्रभातमें भी कविता करता है। यह मौत के काले रास्ते पर भी कविता करता है, यह जीवनकी सुन्दर घाटियोंमें भी कविता करता है। यह इसका स्वभाव है। यह इसका जीवन है। यह इसके बिना रह नहीं सकता। यह सच्चा कवि है। यह एक हज़ार एक कंकरोंमें हीरा है। हमने इसे आजसे अपना दरबारी कवि नियत किया। हम इसे मुंह

मांगी तंख़ाह देंगे। इसका काम केवल इतना है, कि हमें हर रोज़ दरबारमें आकर एक दोहा सुना जाया करे।

कविने दरबारमें जाकर महाराजको एक दिन दोहा सुनाया, दूसरे दिन दोहा सुनाया, तीसरे दिन दोहा सुनाया, चौथे दिन लिख भेजा, मुझसे इस तरहकी कविता नहीं हो सकती। मैं उद्गारोंका कवि हू, किसीकी मरज़ीका गुलाम नहीं।

नौजवान मंत्रीने कहा—"यह आदमी कितना अभागा है।"

मगर महाराजने कहा—"नहीं यह अभागा नहीं, यह कवि है अगर आज तेरा पिता, मेरा पहला मंत्री जीता होता, तो साहित्य मन्दिरके इस पुजारीके पांव पकड़ लेता। यह आज़ाद है, यह आज़ादी की कविता करता है। जो गुलाम होगा, वह गुलामीकी कविता करेगा। यह आदमी दरबारमें आए, या न अए इसकी तंख़ाह हमेशा इसके घर पहुंचती रहे। ऐसे उच्चकोटिके कलाकारका भूखा रहना मेरे राज्यका सबसे बड़ा अपमान है।

नौजवान मंत्रीकी आंखें खुल गईं।

दो डाक्टर

[१]

उनमे ज़मीन आसमानका फ़र्क़ था ।

दोनों डाक्टर थे । दोनों एक ही मुहल्लेमें रहते थे । दोनों एक ही कालेजमें पढ़े थे । दोनोंने एक साथ फ़ाइनलकी परीक्षा पास की थी । अब दोनों एक ही बाज़ारमे प्रेकटिस करते थे, और दोनोंकी दूकानें आमने-सामने थीं ।

मगर फिर भी उनमें ज़मीन आसमानका फर्क़ था । एकका नाम फ़क़ीरचन्द था, दूसरेका अमीरचन्द । एक पुरानी लकीरका फ़क़ीर था, दूसरा पूरा आज़ाद ख़याल । एक धर्मके नामपर जान देता था, दूसरा उसकी खिल्ली उड़ाता था । एक पूजा-पाठ किये बिना मुँहमें पानी डालना भी पाप समझता था, दूसरा कहता था, यह मूर्खोंके युगकी यादगार है । मगर फिर भी दोनों एक दूसरेके मित्र थे, एक दूसरेको चाहते थे, एक दूसरेके सुख-दुःखमें काम आते थे । यह देखकर लोगोंको आश्चर्य होता था । एक दूसरेसे इतने दूर, मगर एक दूसरेके इतने निकट । आग पानीका ऐसा मेल संसारने कम देखा होगा ।

एक दिन फ़क़ीरचन्दने अमीरचन्दसे कहा—एक बात कहूँ, मानोगे ?

अमीरचन्दने कुरसीसे उठते हुए सिगरेट सुलगाया, और फ़कीर-चन्दकी तरफ देखकर बोले—मालूम होता है, कोई ख़ास बात है। फ़रमाईये, क्या आज्ञा है ?

फ़कीरचन्द—पहले प्रतिज्ञा करो, मानोगे। फिर कहूँगा।

अमीरचन्द—अगर मानने लायक़ होगी, तो जरूर मानूँगा।

फ़कीरचन्द—इसकी शर्त नहीं। पहले प्रतिज्ञा करो।

अमीरचन्दने सिगरेटकी राख ज़मीनपर गिराकर कहा—कोरे काग़ज़ पर दस्तखत कराना चाहते हो ?

फ़कीरचन्द—अब यही समझ लो। अगर मुझपर विश्वास है, तो कर दो, नहीं है, तो न करो। बोलो, क्या कहते हो ?

अमीरचन्द—और अगर तुम दो-चार हज़ारका प्रोनोट लिख लो, तो फिर क्या करूँगा ? मैं लाख कहूँ कि साहब ! कोरे काग़ज़पर हस्ताक्षर कर दिये थे; मगर कौन सुनेगा ? सब यही कहेंगे कि बकता है; उस समय रुपया ले लिया, अब माँगा, तो बातें बनाने लगा।

फ़कीरचन्द (कन्धेसे पकड़कर कुरसीपर बैठाते हुए) इस तरह छुटकारा न होगा। प्रतिज्ञा करो, नहीं तो खाना-पीना छोड़ दूँगा। फिर मनाते फिरोगे।

अमीरचन्द (गम्भीरतासे)—तुम डाक्टर हो, या कोतवाल ?

फ़कीरचन्द—तुम कोतवाल ही समझ लो, मगर प्रतिज्ञा करनी होगी। लो अब मेरा समय नष्ट न करो। कहो, जो कहोगे, मानूँगा।

अमीरचन्द (विवशतासे)—अच्छा भई, प्रतिज्ञा की। बको, क्या बकते हो ?

फ़कीरचन्द—बकता यह हूँ कि तुमने आज तक कभी पूजा नहीं की। न कभी मन्दिरमें गये हो; मगर कल जन्माष्टमीका दिन है। कल तुम्हें पूजा करनी होगी। बताओ, करोगे न ?

अमीरचन्द—अब मेरे बताने की बात ही कहां रह गई है ? तुमने वचन ले लिया, मुझे मानना होगा; मगर इससे तुम्हें क्या लाभ होगा ? यह मैं अभी तक नहीं समझ सका।

फ़कीरचन्द—मेरा आत्मा प्रसन्न होगा–मेरा परमात्मा प्रसन्न होगा कि चलो एक बार तो तुमने परमेश्वरकी पूजा कर ली।

अमीरचन्दने फ़कीरचन्दकी तरफ़ प्रेम–पूर्ण आँखोंसे देखा, और मुस्कराकर कहा–मेरा इरादा तो न था कि तुम्हारी स्वर्गपुरी में जाता; मगर मालूम होता है, तुम मुझे घसीटकर ले ही जाओगे। अब न मानूँ, तो बुरा–सा मुहँ बना लोगे। दो दिन खाना ही न खाओगे। तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ? भाभी हमसे ख़फ़ा हो जाएँगी। न बाबा ! यह मुश्किल है। पूजा कर लेंगे।

यह कहकर वह सिगरेटका धुआँ उड़ाने लगे। फ़कीरचन्दने कहा–आज तुमने मेरा जी खुश कर दिया है।

अमीरचन्द—मगर यह पूजाकी विधि क्या है, यह तो बता दो ?

फ़कीरचन्द—स्नान करके अकेले बैठ जाओ और माला फेरो। इसके साथ ही राधाकृष्णका नाम जपते जाओ। यही पूजा है।

अमीरचन्द—बस, इसीसे परमात्मा खुश हो जायगा ? यह तो बड़ा सहज है भई !

माधीने दोनों हाथोंसे सलाम करके कहा—माजी ! छोटूको न जाने क्या हो गया है ? रातको खुस खुस सोया था, आज उठकर देखा, तो बेहोस पडा है। पहले गरम तेलकी मालिस करते रहे कि शायद होसमें आ जाय; मगर मनकता ही नहीं है। अब यहाँ आया हूँ। (इधर–उधर देखकर) डाकदर सा'ब कहाँ है ?

सावित्रीने उसी तरह सिर झुकाये हुए कमरेकी तरफ़ इशारा किया, और स्वेटर बुनते हुए बोली—ज़रा धीरे–धीरे बोल, माला फेर रहे हैं—कबसे बेहोश है ?

माधी गिड़गिड़ाकर बोला—माजी, हमें क्या मालूम ? सवेरे उठ कर झाड़ू देने जाया करता था। आज दिन चढ़े तक सोता रहा, तो मैंने आपकी भंगनसे कहा—इसे जगा, कब तक सोता रहेगा ? उठकर देखा, तो बेहोस पडा था।

यह कहकर माधीने अधीरतासे कमरेकी तरफ़ देखा; मगर उसकी क़िसमत की तरह उसके द्वार अभी तक बन्द थे।

सावित्रीने सिर उठाकर पूछा—रातको शराब तो नहीं पी गया ? तुम्हारे हाथमें पैसा आ जाय, तो शराब पीने दौड़ते हो।

यह कहकर फिर स्वेटर बुनने लगी।

माधी (हाथ बाँधकर)—नहीं माजी, छोटूका ऐसा सुभा ही नहीं है ! वह मरता मर जायगा; पर नसा–पानी कभी न करेगा। मैं सौगंध खा सकता हूँ।

सावित्री—चल झूठा ! सौगंध खा सकता है। बेटेके लिए कौन झूठ न बोलेगा ? बड़ा देवता आया है।

माघी—खैर माजी, झूठा ही सही! अब तो डाकदर साबपर आसा है। चलकर देख लें, तो चैन आये। छोटूकी मा और बहनें तो मरी जा रही हैं। (कुछ देरके बाद) यह माला कब तक खतम होगी? माजी, आप जरा कह दें, तो पहले देख आयें। देरी करनेसे कुछ और खराबी न हो जाय।

सावित्रीने स्वेटर बुनना बन्द कर दिया, और सलाइयाँ सँभालते हुए बोली—अरे, किसकी शामत आई है, जो उनको इस समय बुला जाय। बड़ा सख्त हुक्म है, कि कोई ऊंची आवाज़ से भी न बोले। वह अभी एक घंटेसे पहले बाहर न निकलेंगे। अगर जल्दी है, तो किसी औरको ले जा।

माघी (फिर गिड़गिड़ाकर) परमेसर दूना यकबाल करे माजी, मैं तो बडी आसा लेकर आया था। और किसके पास जाऊँ? आपका गुलाम हूँ, आपके पास आया हूँ।

सावित्री—तो बैठ, माला फेरकर निकलते हैं तो ले जाना। वहां तुझे कौन दतफ़र जाना है?

माघी (कमरेकी तरफ़ देखकर धीरेसे) माजी, डाकदर साब पहले तो कभी माला न फेरते थे, आज ही सुरू की है।

सावित्री (मुस्कराकर)—अगर मालूम होता, कि तू आएगा तो आज भी शुरू न करते।

माघी (फिर हाथ बाँधकर)—नहीं माजी, मेरा यह मुँह कहां। पर यह खौप है कि कहीं और कोई तकलीफ न हो जाय। वर्ना आप हुकम दें, तो सारा दिन दरवज्जेपर पडा रहूँ। आप ही का खिदमत गार हूँ।

यह कहकर ग़रीबने फिर उस कमरेकी तरफ़ देखा, जिसके अन्दर डाक्टर साहब बैठे माला फेर रहे थे।

सावित्री—ज़रा बैठ, अभी निकलते हैं।

यह कहकर सावित्री अंदर चली गई। माघी धूपमें बैठ गया और प्रतीक्षा करने लगा। उसकी आँखें दरवाज़ेपर जमी थीं। ऐसी उत्सुकता, ऐसी एकाग्रता, ऐसी श्रद्धासे किसी पुजारीने अपने उपास्य देवता की तरफ़ भी शायद ही कभी देखा होगा; मगर दरवाज़ा किसी अभागेके भाग्यके समान खुलता ही न था। माघी सोचता था, अमीर लोग जब माला फेरते हैं, तब भी ग़रीबों ही को तकलीफ होती है। अगर मेरी जगह कोई अमीर होता, तो झटपट माला छोड़कर उठ खड़े होते। हम ग़रीब है, हमारी कोई परवा ही नहीं करता।

इतनेमें भंगिनने आकर कहा—तू अजब फक्कड है। वहाँ घरमें बेटा मर रहा है; तू यहाँ बैठा धूप ताप रहा है।

माघीने उसे चुप रहनेका इशारा करके धीरेसे कहा—हमारी परालब्ध ही खोटी है। डाकदार सा' व ने आज तक कभी माला ॥ फेरी थी। आज छोटू बीमार हुआ, आज ही यह माला फेरने बैठ गये हैं। खतम हो, तो लेकर चलूँ। अब छोटूका क्या हाल है?

भंगिन भी अपने भंगीके पास ज़मीन पर बैठ गई और ऊँची आवाज़से बोली—वही हाल है; न बोलता है, न हिलता-डुलता है। तुम डाक्दर सा'बको बुला क्यों नहीं लेते?

माघी—बडे खपा होंगे!

भंगिन—वहां बच्चेकी जानपर बन रही है, तुम्हें खपगीकी पडी है। चल, दे आवाज उठकर। या मैं बुलाऊँ?

माधी—और जो कह दें, मैं नहीं जाता, तो फिर। इतना सोच ले।

भंगिन—यह तुम्हारा वहम है। यह ऐसे आदमी ही नहीं हैं।

माधी—पहले उन दूसरे डाक्दर सा'बके यहां गया था। वह पूजा करने जा रहे थे। उन्होंने साफ कह दिया कि मैं पूजा किये बिना मकानसे बाहर न निकलूंगा। लाख मिन्नत-खुसामदें कीं, उन्होने एक न सुनी।

भंगिन—उनमें और इनमें बडा फरक है।

माधीकी आँखोंमें आँसू आ गये। भर्राई हुई आवाज़मे बोला—कहते थे, तुम्हारा बेटा मरे या जिये, मुझे इसकी परवा नहीं। मेरे लिए पहले पूजा है, बादमें और कुछ।

भंगिन—तुम ऐसे जालम कसाईके पास गये ही क्यों थे?

माधी—मैंने सोचा था, यह आदमी पूजा-पाठ करता है। गरीब की पुकार सुनकर किरपा करेगा।

भंगिन—मैंने तो यह देखा है कि जो बहुत पूजा-पाठ करते हैं, वह आदमीको आदमी ही नहीं समझते, जनावर समझते हैं। इतना भी न सोचा कि इसके मुंहपर ऐसी बात न कहूं, इसके दिलको लग जायगी। और तूने यह सब कुछ सुन लिया?

माधी (ठंडी आह भरकर)—गरीबोंको सब कुछ सुनना ही पडता है।

भंगिन—मगर क्या गरीबोंको किसी और परमेसरने बनाया है? पूजा तो फिर भी हो सकती थी। परमेसर कहीं भागा न जाता था,

पहले देख आता, फिर मजेसे बैठकर सारा दिन पूजा करता। कौन रोकता था?

माघी (दरवाज़ेकी तरफ देखकर)—आज माला खतम ही नहीं होती।

माघी जानता था, इस समय बुलाना ठीक नहीं; बडे खफा होंगे। अजब नहीं, मारकर निकाल दें। मगर वह बाप था, और उसका बेटा बेसुध पड़ा था। उसके दिलको लगी थी। उससे बैठा न जाता था। एक-एक क्षण एक-एक सालसे भी बढ़कर था। कुछ देर दिल और दिमाग़में लड़ाई होती रही, इसके बाद वह उठकर दरवाज़ेके पास चला गया आर डरते डरते मगर विनीत भावसे, बोला—डाकदर सा' ब!

डाक्टर साहबने मुँहसे जवाब न दिया, केवल खाँसकर रह गये; मगर माघीमें इतनी बुद्धि कहां कि इस इशारेका मतलब समझता। वह दरवाज़ेके और भी पास सटक गया और फिर बोला—डाक्दर सा' ब!

डाक्टर साहब की आँखें क्रोधसे लाल हो गईं। सोचने लगे, क्या मुझे अब इतना भी अधिकार नहीं, कि एक घंटा एकान्तमें बैठकर माला फेर लूँ! सबसे कह दिया था कि कोई न बुलाये, फिर भी आ गया। दूसरे क्षणमें उन्होंने उठकर दरवाज़ा खोल दिया और दहलीज़पर खडे होकर माघीकी तरफ़ देखने लगे। मानो चुपकी क्रोध-भाषामें पूछते थे—बोल, क्या कहता है?

अब माघीके मुँहसे बात भी न निकलती थी, न मंगिनकी जबानमें वाक्-शक्ति थी। दोनों चुपचाप खड़े काँप रहे थे।

अमीरचन्दने क्रोधसे कहा—क्या है! क्या किसीने तुमसे कहा न था कि माला फेर रहे हैं!

माधीने भंगिनकी तरफ एक बार देखा, और फिर सिर झुका लिया। भंगिनने आगे बढ़कर कहा—सरकार, आपकी खिदमत खुसामद करते है, आपके पास न आयें, तो और कहाँ जाएं! छोटू बेहोस पडा है।

अमीरचन्दने जवाब न दिया।

माधी बोला—एक ही बेटा है गरीबनिवाज! अगर उसे कुछ हो गया, तो हमारी सारी जिन्दगी खराब हो जायगी। मालस कर-करके हार गए हैं। जरा हरकत नही करता। सिलके समान पडा है सरकार!

सावित्री नहानेके लिए जा रही थी। यह आवाज सुनकर तौलिया लिये हुए ऑगमनें चली आई और बोली—माधी, तू तो बडा ढीठ निकला। क्या मैंने तुझसे कह नहीं दिया था कि माला फेर रहे है, जरा रुक जा। तुम लोगोंसे जितनीं नरमी की जाय, उतना ही सिरपर चढ जाते हो।

जवाव में भंगिन कुछ कहना ही चाहती थी कि अमीरचन्दने उसे इशारेसे रोक दिया, और ज़रा नरम होकर बोले—किसी औरको ले गये होते; मैं माला फेर रहा था।

माधी—सरकार, हम गरीबोंकी कौन सुनता है? आपसे आसा थी, आपके पास चले आये।

अब अमीरचन्दका सारा क्रोध शान्त हो चुका था। ज़रा मुस्कराकर बोले—मगर क्या एक-आध घंटा इन्तज़ार न कर सकते थे? बताओ!

माधी (गिड़गिड़ाकर) बिलकुल बेहोस पडा है, सरकार! जरा चलकर देखलें, तो जिन्दगी-भर दुआएँ देता रहूंगा! सारी उमरकी कमाई है। अभी ब्याहको एक ही महीना हुआ है।

अमीरचन्दने माला रख दी और सूट पहनकर उनके साथ हो लिये। होशमें लानेकी कुछ दवाएं भी साथ ले लीं। जब लौटे, उस समय एक बज चुका था। उस समय तक भूखे-प्यासे वहीं बैठे उसको होशमें लानेकी कोशिश करते रहे अब वह होशमें था, और धीरे-धीरे बातें कर रहा था। भंगी और भंगिनका रोम रोम अमीरचन्दको दुआएँ दे रहा था। अमीरचन्द दस-ग्यारह बजे भोजन किया करते थे; मगर आज उन्हें इस नियमके टूट जानेकी भी परवा न थी। आज भूखे-प्यासे होनेपर भी वे शान्त, प्रसन्न हृदय दिखाई देते थे। आज उन्होंनें ग़रीबोंकी पुकार सुनी थी। आज उन्होंने फ़ीस न ली थी, फ़ीसके बदले दिलकी दुआ ली थी।

[३]

अमीरचन्द जब खाना खाकर दूकानपर पहुंचे, उस समय उनकी दीवार-घड़ीमें सवा दो बज चुके थे। कम्पाउण्डरने कहा—सब मरीज़ लौट गये।

अमीरचन्दने कोट उतारकर खूँटीपर लटकाते हुए कहा—लौट गए, तो लौट जाएं, कोई परवा नहीं।

कम्पउण्डरने एक चिट्ठी उनके हाथमें देकर कहा—सेठ मंगल दासका आदमी आया था। कहता था जिस समय आयें, उसी समय भेज देना। उसकी बेटी बहुत बीमार है।

अमीरचन्दने रूमालसे मुँह साफ़ करके चिट्ठी ले ली, और उसे पढ़े बिना मेज़पर रख दिया।

कम्पाउण्डरने कहा---सेठ साहबका आदमी दो बार आकर लौट गया है। बड़ी ताकीद करता था। कहता था, फ़ौरन आ जायँ।

अमीरचन्दने कुरसीपर बैठकर जवाब दिया—अच्छा!

इतनेमें डाक्टर फ़क़ीरचन्दने अपनी दूकानपर से पुकारकर पूछा—अभी आये हैं या नहीं? आये हों, तो भेज दो।

कम्पाउण्डरने जवाब दिया—अभी आये हैं। (अमीरचन्दसे) क्या कहूँ? आपको बुला रहे हैं।

अमीरचन्दने सिगरेट सुलगाकर दियासलाई ज़मीनपर फेंकी, और उसे पाँव तले मसलकर कहा—कहो, यहाँ आ जायँ।

कम्पाउण्डरने ऊँची आवाजसे कहा—आपको बुला रहे हैं।

अमीरचन्दने अपने आपसे कहा---आज महाभारत छिड़ेगा।

दो मिनट बाद फ़क़ीरचन्दने आकर पूछा---आज तो बड़ी देरमें आए। अभी तक माला फेर रहे थे, या किसीको देखने चले गये थे?

अमीरचन्दने कुरसीपर बैठे बैठे अपने मित्रकी तरफ़ देखा, और ऐसे, जैसे कोई किसीकी शिकायत करता है, बोले---भई, क्या कहूँ! इन मरीज़ों के मारे नाकों दम है। दरवाज़ा बन्द कर लिया था, सबसे कह दिया था कि हमें कोई न बुलाये; मगर कौन सुनता है? एक आदमी आकर दरवाज़ा तोड़ने लगा। जी तो चाहता है, डाक्टरी छोड़ कर कोई और काम शुरू कर दूं। यह भी कोई पेशा है, न दिनको चैन न रातको आराम! कोई छै घंटेका नौकर है, कोई आठका; यहां चौबीस घंटोंकी गुलामी है। माला फेरने की भी फ़ुरसत नहीं।

फ़क़ीरचन्दने सिर हिलाया। मानो कह रहे थे, मुझे पहले ही आशा न थी। फिर कहा—कौन आया? कोई अमीर होगा।

अमीरचन्द—अमीर होता, तो साफ़ जवाब दे देता। कह देता, किसी औरको ले जाईये।

फ़कीरचन्द—तो क्या कोई भिखमंगा था, जिसके लिए माला धरी रह गई?

अमीरचन्द—वही अपना भगी माधी था। बड़ा गिड़गिड़ाता था। और गिड़गिड़ाता क्या था, रोता था। उसका एक ही लड़का है, वही बीमार है। मुझे दया आ गई। सोचा, कोई अमीर हो तो मामूली बात है; जिसे फ़ीस दे, ले जाय। मगर उसके पास फ़ीस कहाँ? जाना पड़ा।

फ़कीरचन्द—मेरे पास भी आया था। मैंने तो साफ़ कह दिया कि पहले पूजा कर लूँ, फिर चलूँगा। वह चिल्लाने लगा, तो मैंने नौकरसे कहा बाहर निकाल दो। दुम दबाकर भाग गया। सवाल यह है कि आख़िर कोई समय भगवानके लिए भी तो चाहिए या नहीं? दुनियादारी तो दिन-रात होती रहती है। वहाँ कितनी देर लगी?

अमीरचन्द—अब आया हूँ।

फ़कीरचन्द—मेरा जी चाहता है, तुम्हारा कभी मुँह न देखूँ। तुमने कल मुझसे क्या प्रतिज्ञा की थी?

अमीरचन्द (कान पकड़कर)—बेशक भूल हो गई। अबके क्षमा कर दो।

फकीरचन्द—तुम्हारा सारा जविन इसी तरह बीत जायगा। चौबीस घंटे दुनियाका काम करते हो, क्या तुम्हारे पास दो-चार पल भी परमेश्वरके लिए नहीं हैं? मरोगे, तो नरकमें जाएगे!

अमीरचन्द (मुस्कराकर)—वहां तो हज़ारों बीमार होंगे। मैं अकेला क्या करूंगा। हम तुम दोनों होंगे, तो किसी-न-किसी तरह काम चला लेंगे। चलोगे न मेरे साथ तुम भी?

फ़क़ीरचन्द—तुम हँसते हो, मुझे ज़हर चढ़ता है। अब रातको मन्दिरमें दर्शन करने भी चलोगे या नहीं? अगर न गये, तो याद रखो हमसे तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं।

अमीरचन्द—चलो, मान लिया! कितने बजे चलोगे?

फ़क़ीरचन्द—यही आठ सवा आठ बजे, और क्या! कहीं ग़ायब न हो जाना।

अमीरचन्द—मेरी मजाल है।

मगर आठ बजे अमीरचन्द दूकानपर न थे। कम्पाउण्डरने कहा—माधी आया था, उसीके साथ गये हैं।

फ़क़ीरचन्द— कुछ कह गये हैं या नहीं?

कम्पाउण्डर—कहते थे, अगर मैं एक घंटे तक न आऊँ, तो दूकान बन्द करके चले जाना। मेरा खयाल है, देरमें लौटेंगे। वह छोटू फिर बीमार हो गया है।

फ़क़ीरचन्द—ज़रा सोचो, सारी दुनिया भगवानके दर्शनोंको जा रही है, लाला साहब भंगियोंके मकानोंकी सैर कर रहे हैं! हम चाहते थे, यह भी दर्शन कर लें; मगर जब भाग ही फूटे हों, तो कोई क्या करे? ख़ैर, हमने अपना मित्र-धर्म पूरा कर दिया। हमें यही सन्तोष है।

कम्पाउण्डर—सवेरे सेठ मंगलदासका आदमी आया था और कह गया था कि आयें, तो भेज देना। जब चलनेको तैयार हुए, तो वही

आँखोंसे आग के शरारे निकल रहे थे। बोले—"तू हमसे दिल्लगी करता है।" मुझे अपने शरीरका लहू सर्द होता मालूम हुआ। मैं बोलना चाहता था; मगर मुँहमें वाक्-शक्ति न थी। मैंने डरते-डरते उनकी तरफ़ देखा, और गरदन झुका ली। उन्होंने कहा—"आज इस नगरमें हज़ारों लोगोंने मेरी पूजा की है; मगर सबकी पूजा दिखावा है। सची पूजा एक ही आदमीने की है, और वह तेरा मित्र अमीरचन्द है। मुझे खुश करना है, तो जाकर उससे अपने कड़वे वचनोंके लिये माफी माँग। वह मेरा भक्त नहीं, भक्तराज है। यह कहकर भगवानने मेरी पीठपर प्यारसे थपकी दी। देखते देखते मुझपर बेसुधी-सी छा गई। जब सुध आई, तो वही कमरा था, वही मूर्ति, वही लैम्प। चारों तरफ देखा, श्रीकृष्ण कहीं भी न थे। जाने कहाँसे आये थे, कहाँको चले गये।

कुछ देर दोनों मित्र चुपचाप सिर झुकाए बैठे रहे। इसके बाद अमीरचन्द बोले—मैं समझ गया, यह सुपना था। तीन बजे उठे थे, पूजा करते-करते झपकी आ गई। वर्ना हमारी क़िस्मत ऐसी कहाँ कि श्रीकृष्ण हमें अपना भक्त समझें। जरूर सुपना था।

फ़क़ीरचन्दने अमीरचन्दको श्रद्धाभावसे देखा, और कहा—तुम इसे सुपना कहते हो? मैं समझता हूँ, मेरे सारे जीवनमें यही घड़ियाँ होश-हवासकी घड़ियाँ थीं। आज मैंने सत्यको देखा है। आज मैंने सत्यका तत्त्व पाया है। मैं अन्धकारमें भटक रहा था, आज मेरी आँखें खुल गई हैं। आज मुझे आत्माका उजाला मिल गया है।

यह कहते-कहते फ़क़ीरचन्दनेअपने मित्रके पाव पकड़ लिये, और कहा आज तक तुम मेरे प्यारे थे; मगर अब तुम मेरे भगवानके प्यारे हो।

इस समय उनकी आंखोंमें श्रद्धा और भक्तिके आंसू लहरा रहे थे।

गंगासिंह

स्काच मिशन स्कूल स्यालकोटका हेड चपरासी गङ्गासिंह जब बुड्ढा हो गया, तो एक दिन हेडमास्टरके पास जाकर बोला—हज्जूर! अब मुझे छुट्टी दीजिये। आखिर कब तक काम करूंगा।

हेडमास्टर गुलाम मसीह एक बड़ा-सा रजिस्टर देख रहे थे, उससे आंखें उठाकर बोले—क्या है गङ्गासिंह? तुमने क्या कहा?

गङ्गासिंहने ज़मीनकी तरफ़ देखते-देखते कहा हज्जूर! मैंने यह दरखास की है कि अब मुझे छुट्टी दे दी जाय। अब तो आंखें भी कमजोर हो गईं। सारा सरीर बिसराम मागता है।

गुलाम मसीहने मुस्कराकर कहा—छुट्टी तो मैं तुम्हें आज दिला सकता हूं। मगर घरमें बेकार बैठकर क्या करोगे? तुमने यह भी सोचा?

गुलाम मसीहका रूमाल—ज़मीनपर गिर गया था, गङ्गासिंहने उसे उठाकर मेजपर रख दिया और रुक-रुककर जवाब दिया—साहब! अगर आपकी किरपासे दो पैसोंका सहारा हो जाय, तो हरिद्वार जा बैठूं और बाकी उमर परमेसरका भजन करनेमें गुजार दूं।

गुलाम मसीह—दो पैसोंका सहारा कैसा?

गङ्गासिंह—आपने एक बार कहा था न कि तुम्हें तो पिनसन मिलनी चाहिए।

गुलाम मसीहने ज़रा चौंककर कहा—अरे! तुम्हारा इशारा इस तरफ़ था। मगर तुम्हें क्या मालूम नहीं कि हमारा मिशन पेन्शन नहीं देता। मैंने तो ऐसे ही हंसी-हंसीमें एक बात कह दी थी, तुमने गिरह बांध ली।

गङ्गासिंह—हज्जूर मैं तो यह जानता हूं कि अगर आप चार अच्छर लिख भेजेंगे, तो मिसन कभी इनकार न करेगा। आप जो चाहें कर सकते है। और मेरे काममें कौन छप्पन टके खरच हो जायंगे। दस पन्द्रह रुपये महीना बांध दें, मेरे लिए यही बहुत है। आप एक बार लिख कर तो देखें। मेरा काम बन जाएगा।

गुलाम मसीह—लिखनेको तो मैं लिख दूं, मगर मुझे उम्मीद नहीं कि मिशन माने।

गङ्गासिंह—मगर मुझे तो पूरी आसा है। और आसा क्या विस्वास है। मेरा मन कहता है, यह काम फतह हो जायगा।

गुलाम मसीहने कुरसीके साथ पीठ लगा ली, और आंखें बन्द करके सोचने लगे। इसका मतलब यह था कि उनपर असर हो गया है। गङ्गासिंहका उत्साह बढ़ गया, और भी विनीत भावसे बोला—हज्जूर! पचास साल नौकरी की है। जब आया था, उस समय पन्द्रह सालका था, अब, पैंसठ सालका हूं। बच्चे बाले ब्याहे गए, घरवाली मर गई। एक चचा था, दो महीने हुए, उसे भी परमेसरने अपने घर बुला लिया। गोया मेरे सारे बन्धन काट दिए। अब भी दुनियाकी मोह मायामें फंसा रहूं, तो मुझसा अभागा कौन होगा?

गुलाम मसीह कुछ देर उसी तरह आंखे मूंदे सोचते रहे, और गङ्गासिंह उसी तरह खड़ा प्रतीक्षा करता रहा। थोड़ी देर बाद गुलाम मसीहने आँखें खोलीं और कहा—अच्छा! हम लिखेंगे।

गङ्गासिंहने सलाम किया, और दफ्तरसे बाहर जाकर अपने स्टूलपर बैठ गया—अब उसे ज़रा भी चिन्ता न थी। गुलाम मसीहने कहा था, हम लिखेंगे, और इसका मतलब यह था कि यह काम हो जायेगा।

[२]

तीन महिने बीत गए। गङ्गासिंह अपना काम करता रहा। मगर अब उसका मन काममें लगता न था। जो कुछ करता था, ऊपरके मनसे; जो कुछ करता था, जीपर बोझ डालकर। मानो, टाल रहा था, मानो समय गुज़ार रहा था। क़ैदीके छुटनेके दिन निकट आ गए थे, अब उसका मन इस कालकोठरीमें न लगता था, बाहरकी आज़ाद दुनियाकी तरफ़ दौडता था। कभी स्कूलका घण्टा बजानेमें उसको आत्माकी तृप्ति मिलती थी, आज यही क म उसके लिए बेगारसे भी ज्यादा भयानक था। कल तक जो वरदी पहनकर वह अपने आपको नव्वाब समझने लगता था, आज वही वरदी उसके लिए क़ैदकी बेड़ी थी, जिसे पहनकर उसे शर्म आती थी। उसे उतारकर उसका सीना फूल उठेगा, उसकी दुनिया बदल जाएगी, वह स्वर्गमें पहुंच जाएगा। लेकिन अगर मिशनने इनकार कर दिया तो ...गङ्गासिंहका सिर चकरा जाता, उठते हुए हौसले बैठ जाते। आशा सामने आकर परे चली

जाए, तो आदमीकी खुशी कितनी जल्दी मर जाती है। गङ्गासिंहकी भी यही हालत थी, वह कभी आशाके किनारेपर जा पहुंचता था, कभी निराशाके भंवरमें डूबने लगता था।

इसी तरह आशा-निराशाके तीन उब-डुब महीने बीत गए, और भाग्यके निपटारेका दिन आ गया।

गुलाम मसीहने गङ्गासिंहको बुलाकर कहा....हमने मिशनको लिखा था। आज जवाब आया है।

गङ्गासिंहका कलेजा धड़कने लगा।

गुलाम मसीहने कहा....मिशनने तुम्हारी लम्बी नौकरीका ख्याल करके तुम्हारे लिये १९) पेन्शन मंजूर कर दी है।

गङ्गासिंहके दिलका भार उतर गया।

अब तुम जहा चाहो, जा सकते हो। हरिद्वार जाओ, काशी जाओ, ऋषिकेश जाओ। अब तुम्हारे पाँव में नौकरी की बेड़ियां नहीं, आज़ादीके पर हैं। हमें खुशी है कि तुम्हारे मनकी ख्वाहिश पूरी हो गई। खूब भगवानका भजन करो।

गङ्गासिंहने वही सुना जो सुनना चाहता था। मगर वह झुका नहीं, न उसने गुलाम मसीहके पांवको हाथ लगाया। उसने केवल अपनी भीगी हुई पलकें अपने मैले अंगोछेसे पोंछी और भावोंके भारसे कांपते हुए स्वरमें कहा :-

साहब ! मैं आपको कभी न भूलूंगा।

गुलाम मसीहने इसका कोई जवाब न दिया और धीरेसे कहा बैठ जाओ।

इशारा कुरसीकी तरफ़ था। गङ्गासिंहको आश्चर्य हुआ। ग़रीबको आज तक कभी किसीने कुरसी पेश न की थी। शुरू-शुरूमें उसे कुरसीपर बैठनेका शौक चर्राया था। मगर अब यह लालसा मुद्दत गुज़री मर-खप चुकी थी। आज वह लाश हिलने लगी। मगर गङ्गा-सिंह उसी तरह खड़ा रहा।

गुलाम मसीहने फिर कहा...बैठ जाओ।

मगर गङ्गासिंह अबके भी खड़ा रहा, और विनय भावसे बोला—हज़ूर। आपके सामने मैं कुरसीपर नहीं बैठ सकता, जब तक जीता हूं, आपका सेवक हूं। और सेवककी यह मजाल कहां कि मालिकके सामने कुरसी पर बैठ जाय।

गुलाम मसीहने उसकी तरफ़ देखा, और मुस्कराकर कहा—तो अच्छा जाओ, जाकर अपना काम करो।

गङ्गासिंह बाहर निकला, तो उसकी दुनिया ही बदली हुई थी। आज उसके दिलकी खुशी उसके दिलमें न समाती थी। कभी होठों पर आ बैठती थी, कभी आखोंसे झांकती थी। वह चाहता था, कोई उससे पूछे, और वह सब कुछ बता दे। मगर वहाँ कौन पूछता? एक तरफ़ हेडमास्टरका दफ्तर था, दूसरी तरफ़ क्लार्कका कमरा, तीसरी तरफ़ हाल। विद्यार्थी अध्यापक जो कोई आता था, चुपचाप गुज़र जाता था गङ्गासिंहने अपनी जेबसे निकालकर घडी देखी, स्कूलका घण्टा बज-नेमें अभी १० मिनटकी देर थी। मगर फिर भी उसने लकड़ी की मुंगरी उठाई और बाहर चला आया। वहा उसे जो कोई मिलेगा, उसीसे अपने मनकी बात कह देगा और खुश होगा। खुशीकी इतनी

बड़ी ख़बर छिपा रखना आसान नहीं; और ख़ासकर बूढ़े और बच्चेके लिए, जो मामूली सी ख़बर भी लोगोंको बार-बार सुनाते हैं और फिर भी नहीं थकते।

मगर सब अपने-अपने काम में मग्न थे। विद्यार्थी पढ़ रहे थे, अध्यापक पढ़ा रहे थे। कुछ लड़के ऐसे भी थे, जिनका घण्टा ख़ाली था। मगर वे जगह जगह टोलियाँ बनाए अपनी दुनियाकी बातें कर रहे थे। गङ्गासिंहके पेटमें कुछ होने लगा। क्या करे? अपनी ख़ुशीकी ख़बर किसे सुनाए? वह चुपचाप सोचने लगा.....घण्टा बजेगा तो मौका मिलेगा। उसने फिर घड़ी देखी, मगर अभी घण्टा बजनेमें आठ मिनट बाक़ी थे। गङ्गासिंह झुंझला उठा। आज यह समय ही नहीं गुज़रता। पहले तो ऐसा न होता था, दस मिनट बातकी बातमें गुज़र जाते थे। आज घड़ीकी सुइयां ही नहीं चलतीं। उसने घड़ी जेबमें डाल ली और धीरे-धीरे दिलमें गिननें लगा-एक-दो-तीन-चार-पांच-छः-।

उसने सोचा-सौ तक गिनती करके देखता हूं, घड़ीमें कितने मिनट गुज़रते हैं। इस तरह समय जल्दी गुज़रता है। वह फिर गिनने लगा--सात--आठ--नौ--दस....।

इतने में किसीने उसके कन्धेपर हाथ रख दिया। गङ्गासिंहने मुड़कर देखा दफ्तरका क्लार्क कृपासागर था। गङ्गासिंहने गिनती करना बन्द कर दिया और सोचने लगा-पहले इसे सुनाऊ।

कृपासागरने छूटते ही कहा--अगर मिठाई खिलानेका वादा करो, तो एक शुभ समाचार सुनाऊं।

गङ्गासिंहने मुस्कराकर जवाब दिया—मिठाई आप वैसे ही खा लें मगर वह सुभ समाचार तो मैं पहले ही सुन चुका।

कृपासागर–न भई ! वह समाचार तुमने अभी तक नहीं सुना।

गङ्गासिंह (एक एक शब्दपर जोर देकर) मुझे पिन्सन मिल गई है। यही समाचार है ना ?

कृपासागरने गङ्गासिंहका हाथ अपने हाथमें लेकर उसे बधाई दी और कहा–मगर मेरी ख़बर और है।

गङ्गासिंहको आश्चर्य हुआ।

कृपासागर—लो, अब वादा करो....मिठाई खिलाओगे ?

गङ्गासिंह—खिलाऊंगा।

कृपासागर—हेडमास्टरने निश्चय किया है कि जब तुम जाने लगो तो स्कूलकी तरफसे तुम्हें एक पार्टी दी जाए।

गङ्गासिंहको यह सुपनेमें भी ख़याल न था, बोला....पार्टी !

कृपासागर—हां, पार्टी ! उसमें तुम्हें एड्रेस दिया जाएगा, तोहफ़े दिये जाएंगे, मास्टरोंके साथ तुम्हारी तसवीर उतारी जायगी।

गङ्गासिंहको सन्देह हुआ, कहीं यह हंसी तो नहीं है। विनयसे बोला.. .आज तक तो किसीने चपरासीको कभी पार्टी नहीं दी। ऐसी अनहोनी बात कैसे हो जायगी ?

कृपासागरने जोश से कहा–हमारे हेडमास्टर कहते हैं, गङ्गासिंहने पचास साल नौकरी की है, और ऐसी मेहनत ईनामदारी और सचाईसे कि कोई मास्टर भी क्या करेगा ? कहते हैं, दुनिया चपरासीको चपरासी समझती है, मगर मैं समझतां हूं, चपरासी चपरासी बादमें है, आदमी पहले है। तुम्हारे तोहफ़ों के लिए तीन सौ रुपया मञ्जूर हुआ है। बोलो, क्या क्या चीज़ लेना चाहते हो ?

गङ्गासिंहकी आंखें चमकने लगीं। मगर उसे कोई जवाब न सूझता था। क्या मांगे, क्या न मांगे?

कृपासागरने जेबसे कागज़ पेन्सिल निकालकर कहा—बोलो! क्या-क्या लिखूं? एक रामायण, एक प्रेमसागर, एक मीराबाईके भजन।

गङ्गासिंहने खुश होकर कहा—ठीक है! लिख लीजिये!

कृपासागरने लिखकर कहा....और? एक घडी, एक छड़ी?

गङ्गासिंहके जीवनका सुपना पूरा हो गया, बोला... यह तो आपने मेरे दिलकी कह दी। दोनों चीजें कामकी है, लिखिए।

कृपासागर—और बोलो?

गङ्गासिंह—और क्या बोलूं, मुझे तो कुछ सूझता नहीं,.... अच्छा! एक ग्रामोफ़ोन न लिख लीजिये?

कृपासागर—वाह गङ्गासिंह! यह तुमने खूब सोचा। बुढ़ापेमें यह चीज़ बड़ी ज़रुरी है। जहां बैठोगे, वहीं जलसा जम जाएगा। मैंने तो देरसे फ़ैसला कर रखा है कि जब बुड्ढा हूंगा, तो एक ग्रामोफ़ोन ज़रुर ख़रीदूंगा। गाना मुश्किल है, सुनना तो मुश्किल नही।

गङ्गासिंह—एक दो रिकार्ड भी लिख लीजिये, कोई अच्छे-से भजन हों।

कृपासागर—अरे भाई! ग्रामोफ़ोन आएगा तो क्या रिकार्ड न आएंगे। लो मैंने लिख दिया कि जितने रुपये बाकी बचें, सबके रिकार्ड ख़रीद लिए जाएं।

गङ्गासिंहने पूछा—हेडमास्टर साहब कुछ और भी कहते थे?

कृपासागर—तुम्हारी तारीफ़ करते थे। कहते थे, ऐसा मेहनती

और सच्चा आदमी मैंने आज तक नहीं देखा। आज तुम्हारी पेन्शनकी मञ्जूरी आई है, आज बहुत खुश हैं।

गङ्गासिंहने ज़बानसे कुछ न कहा, मगर उसके दिलसे हेडमास्टर के लिए दुआएं निकल रही थीं। थोड़ी देर बाद सारा स्कूल उसके इर्द-गिर्द जमा था और उसे बधाई दे रहा था।

[३]

अब गङ्गासिंह दिन-रात हरिद्वार और हरिद्वारके जीवनके सुपने देखने लगा। प्रभातके समय हरकी पौड़ीपर जाकर नहाया करूंगा और भगवानका सुमिरन करूंगा। इसके बाद खा-पीकर किसी साधू महात्मा के दर्शन करने चला जाऊंगा। कभी रामायण आदि कोई ग्रन्थ ले बैठूंगा। जब इनसे जी ऊब जायगा, ग्रामोफ़ोन शुरू कर दूंगा। दो-चार आदमी आ गए। कुछ देर बाजा बजता रहा, इसके बाद ज्ञान-ध्यानकी बातें होने लगीं। शामको गङ्गाके किनारे जा बैठे, रातको बेफ़िक्रीसे पांव पसार कर सो गए। कभी जी चाहा तो हृषीकेश चले गए, जी चाहा तो पहाड़पर चले गए और प्रकृतिका तमाशा देख आए। न किसीके लेने में, न किसीके देनेमें। हरिद्वारका यह जीवन प्रेम और पवित्रताकी पुनीत नगरी थी, जो धीरे धीरे गङ्गासिंहके नज़दीक आ रही थी। और गङ्गासिंह अपनी पुरानी दुनियाकी रस्सियां तुड़वाकर भागनेके लिए आकुल व्याकुल हो रहा था। अब वह यहां रहकर खुश न था। अब यहां उसका दम घुटता था। अब उसकी देह यहां थी, दिल यहां न था।

एक दिन एक विद्यार्थीने उसके पाससे गुज़रते-गुज़रते पूछा——अब हरिद्वार कब तक जानेका इरादा है ?

गङ्गासिंहने दाढ़ीपर हाथ फेरा और उसे रोककर कहा——बेटा! हेडमास्टर जी नहीं छोड़ते। मैं तो आज चला जाउं।

विद्यार्थी—जब मिशनसे मञ्जूरी आ चुकी, तो छोड़ते क्यों नहीं ? क्या कहते हैं ?

गङ्गासिंह—कहते है, नौकरीके पचास साल पूरे कर लो, फिर जाओ। मैंने भी कहा, लाओ चार दिन और सही। आज दस तारीख है, २५ तारीखको पचास साल पूरे हो जायंगे। २६ को गङ्गासिंह गाड़ीमें बैठ जायगा।

विद्यार्थीने चलनेका इरादा किया—वहां कहां रहोगे, यह भी सोचा ?

यह कहकर विद्यार्थी चला।

गङ्गासिंहने जेबसे एक चिट्ठी निकाली और विद्यार्थीके पीछे दौड़ कर उसके हाथमें रख दी--सब इन्तजाम कर लिया है, बेटा! यह देखो।

विद्यार्थीको फिर रुकना पड़ा। उसने चिट्ठी पढकर गङ्गासिंहको लौटा दी और कहा–सुना है, बडी अच्छी जगह है।

गङ्गासिंह---जगह क्या है, भाई! स्वर्ग है। गङ्गाका किनारा, महात्माओंकी संगत। वहां जाकर जीवन मिल जाता है, आत्मा जाग उठता है, आदमीका दिल बदल जाता है।

विद्यार्थीके दिलमें भी गुदगुदी-सी हुई। बोला–मेरा भी जी चाहता है, एक बार देख आऊं।

गङ्गासिंह—तो भैया! छुट्टियोंमें चले आना। कौन बहुत फासला है। मेरे पास ठहरना। हो नहीं सकता कि वहां तुम्हें ज़रा भी तकलीफ हो जाय।"

इतनेमें एक दूसरा विद्यार्थी भी पास आ गया। उसने गङ्गासिंह की आख़िरी बात सुनी, तो मुस्कराकर कहा—बाबा! आख़िर कितने आदमियोंको दावत दोगे। जिससे मिलते हो उसी से कह देते हो, मेरे पास ठहरना।

गङ्गासिंहने खिसियाना-सा होकर जवाब दिया—सबसे तो नहीं कहता।

पहला विद्यार्थी रोकता ही रह गया, मगर दूसरेने कहा—कमसे कम बीस लड़कोंको तो मैं भी जानता हूं, जिनको तुम दावत दे चुके हो। बीस ऐसे भी होंगे जिनको मै नहीं जानता। और अभी तुम्हारे जानेमें पन्द्रह बीस दिन बाक़ी हैं। इस बीचमें यह संख्या और भी बढ़ेगी। आख़िर तुमने वहां मकान लिया है या महल? मैंने तो सुना है, छोटा-सा मकान है।

गङ्गासिंह—भैया! मकान छोटा है मगर दिल तो छोटा नहीं।

पहला विद्यार्थी (दूसरेसे)—अब कहो, क्या कहते हो?

दूसरा—कहता यह हूं, कि अगर दस लड़के एक ही समयमें वहां चले गए, तो कहां ठहरेंगे? मकानमें या दिलमें?

गङ्गासिंह—ज़मीनपर दरी बिछाएंगे और लेट जाएंगे।

पहला—क्या आसानीसे रास्ता निकाल लिया।

दूसरा—हमसे तो जमीनपर न सोया जाय गा भाई।

गङ्गासिंह—तो तुम्हें चारपाई मिल जायगी।

दोनों विद्यार्थी खिलखिलाकर हंस पड़े। इतनेमें एक मास्टरने आकर कहा—गङ्गासिंह! जाकर घण्टा बजाओ, समय हो गया है। आजकल तुम्हें कुछ सूझता ही नहीं है।

इसी तरह दो सप्ताह गुजर गए और २९ तारीखका दिन आ गया।

दोपहरका समय था। गङ्गासिंह स्कूलमें आया। आज सांझको जलसा है। आज वह कुरसीपर बैठेगा, आज स्कूलकी तरफ़से उसे ऐड्रेस मिलेगा। आज तक वह दूसरों के लिए फूलोंके हार बनवाकर लाता रहा है। आज दूसरे फूलोंके हार बनवाकर लाएंगे उसके लिए। पता नहीं, वह हार उसके गलेमें कौन पहनावेगा? आज तक जब भी कोई जलसा होता था, उसका सारा प्रबन्ध वह करता था, आज इससे उसे कोई वास्ता ही न था। आज दूसरे चपरासी और अध्यापक काम करते थे, और वह देखता था और मुस्कराता था और अपने सौभाग्यपर फूला न समाता था। आज उसने अपनी वर्दी पहन ली थी, मगर कोई काम न करता था, न आज उसे कोई काम करने ही देता था। वह आज सबसे मिलता था और विदाई लेता था। मास्टर कहते थे—दुआ करो, यह मुबारक दिन हमारे लिए भी जल्दी आए। विद्यार्थी कहते थे, हमें अपना पूरा पता लिख भेजना, हम जब भी हरिद्वार आएंगे, मिलेंगे। गङ्गासिंह सबसे हंस-हंसकर मिलता था और सबसे कहता था—अगर वहां आओ, तो मेरे ही यहां ठहरना।

[४]

तीन बजे गङ्गासिंहको हेडमास्टरने बुलाया और कहा—लो भाई!

अब जलसा शुरू होनेमें देर नहीं एक ही घण्टा बाकी है। तुम जाकर रामधनको चार्ज दे दो, तुम्हारे बाद वही हेड चपरासी होगा।

गङ्गासिहके चेहरेपर फूल खिले हुए थे, रामधनको साथ लेकर अपनी कोठरीकी तरफ चला।

राहमें रामधनने पूछा---आज तुम्हारे दिलका क्या हाल है?

गङ्गासिंहने जवाब दिया–जब पञ्छीको मालूम हो जाय कि आज उसे आजादी मिलनेवाली है, तो उसकी क्या दसा होती है?

रामधन–खुसीसे पागल हो जाता है।

गङ्गासिंह—बस! मेरे दिलका भी यही हाल समझ लो।

रामधन–मगर हमारा क्या हाल है, तुम्हें यह भी मालूम है?

गङ्गासिंहके दिलपर एक धक्का-सा लगा, बोला–सब जानता हूँ, भाई! अन्धा नहीं हूँ। तुम्हें मेरे जानेका बड़ा दुःख है। एक साथ रहते थे, एक साथ खाते थे, एक साथ काम करते थे। प्यारमुहब्बतके ये दिन कैसे भूल सकते हैं?

रामधन—मगर तुम्हें तो हमारी जरा भी परवा नहीं; हो अकेले भागे जाते हो।

गङ्गासिंहने बातको हंसीमें उड़ानेका यत्न किया—हर आदमी अकेला आता है, अकेला चला जाता है। कौन किसीकी परतीच्छा करता है!

रामधन चलते-चलते रुक गया और गङ्गासिंहकी तरफ तीखी निगाहोंसे देखकर बोला—बड़े स्वार्थी हो, तुम्हें इस समय भी हंसी सूझती है।

गङ्गासिंहने रामधनको पकड़कर खींचा और जवाब दिया—जब बड़े-बड़े राजे-महाराजे अकेले चले गए, तो हम-तुम किस गिनतीमें हैं भाई !

सामनेसे प्रभुदास कहार गङ्गासिंहका ग्रामोफ़ोन लिए 'हाल' की तरफ़ जा रहा था। उसे देखकर गङ्गासिंहका चेहरा और भी खिल उठा। बोला—ग्रामोफ़ोन खूब बढ़िया मालूम होता है।

इस समय तक दोनों गङ्गासिंहकी कोठरीके पास पहुंच चुके थे। गङ्गासिंहने जेबसे चाबी निकालकर ताला खोला और दोनों अन्दर चले गए। रामधन इधर-उधर देखकर बोला—तुम वहां ग्रामोफ़ोन बजाओगे और खुस होगे। हम यहां तुम्हारी यादमें ठण्डी आहें भरेंगे, और रोएंगे।

गङ्गासिंहनें चारपाईके नीचेसे अपना ट्रंक घसीटकर निकाला और उसे खोलते हुए बोला—अगर तुम यह समझ लो कि अब इस आदमीके जञ्जाल कट रहे हैं, तो तुम्हें भी खुसी हो, दुःख न हो। ऐसा दिन परमेसर सबको दे।

गङ्गासिंह स्कूलकी चीज़ें ट्रङ्कसे निकालने लगा। चीज़ें क्या थीं ? एक धुली हुई वर्दी, एक चपरास, एक-दो पेटियां, एक टार्च।

गङ्गासिंहने यह सब कुछ निकालकर बाहर रखा और अपना थाली-लोटा ट्रङ्कमें रखकर उसका ताला बन्द कर दिया। इसी समय दसवीं जमातका एक विद्यार्थी आकर दरवाज़ेपर खड़ा हो गया और रामधनसे बोला—तुम यहां गप्पें लडा रहे हो, वहां लाला कृपासागर ख़फ़ा हो रहे हैं।

रामधन—उनका क्या है। उनकी भवें तो बारहों महीने तनी रहती हैं। आज तक कभी खुस भी हुए हैं किसी से ?

विद्यार्थी—तो चलते हो या जाकर कह दूं नहीं आता।

रामधन—कह दो, काम कर रहा है, करके आएगा।

विद्यार्थी चला गया। रामधन बड़बड करने लगा। गङ्गासिहने आगपर पानी डाला—नौकरी करने चले हो और फिर अकड़ते हो। यह बात बुरी! जाओ, जाकर पूछ आओ, क्या कहते हैं?

रामधन चला गया। गङ्गासिहने अपनी घड़ी और वर्दी उतारकर एक तरफ़ रख दी और अपने कपडे पहन लिए। इस समय उसके दिलको जो खुशी हुई, उसका वर्णन करना आसान नहीं। उसने चारपाईसे अपना बिस्तरा उठाया और उसे तह करके अपने ट्रङ्कपर रख दिया। फिर उसीपर बैठ गया और कमेरेमें चारों तरफ़ देखने लगा, कि उसकी कोई चीज़ बाहर तो नहीं रह गई।

थोड़ी देर बाद उधरसे स्कूलका भंगी गुजारा। उसे भी गङ्गासिहके जानेका दुःख था। मगर उसने अपना दुःख प्रकट नहीं किया, मुस्कराकर बोला—भाई! तुम तो आज ही परदेसी बन गए! इस तरह क्यों बैठे हो?

भंगी तो यह बात कहकर चलता बना, मगर गंगासिंहके दिलमें आग लग गयी। ख्याल आया, क्या मैं सचमुच परदेसी हो गया हूं, क्या अब सचमुच मेरा स्कूलसे कोई सम्बन्ध नहीं। आखें उठाकर देखा, तो वर्दी चपरास, घड़ी, सब चीजें पुकार-पुकारकर कह रही थीं, आज हमारा-तुम्हारा नाता टूट गया। जैसे कमरा भी कह रहा था, हमारा-तुम्हारा सम्बन्ध यहीं तक था। गंगासिहका दिमाग़ खौलने लगा स्कूलका प्यार जो उसकी नस-नसमे बेहोश पडा था, देखते-देखते होशमें आकर बैठ गया। उसके इस प्यारने कुछ देर आंखें मलीं, स्थिति-

पर विचार किया और इसके बाद चिल्लाकर कहा—इस कमरेकी हरएक चीज़ मेरी नहीं तो और किसकी है। जो चीज़ें कल तक मेरी और मेरे जीवनका अंग थीं, वे आज पराई कैसे हो जायंगी?" गङ्गासिंहको ऐसा मालूम हुआ, जैसे वह आजतक सोया हुआ था, जैसे उसके विवेककी आंखें बन्द हो गई थीं, जैसे आज तक उसने अपने आपको न समझा था, न जाना था, न देखा था।

वह अर्धचेतनाकी अवस्थामें बाहर निकला और दरवाज़ेके साथ पीठ लगाकर खड़ा हो गया। दरवाज़ेके सामने नीमका एक पेड़ था, जिसे कई साल हुए गङ्गासिंहने अपने हाथसे बोया था, और अपने हाथसे पानी पिला-पिलाकर बड़ा किया था। आज उसे वह भी पराया मालूम हुआ। दूर फ़ासलेपर एक दूसरे पेड़के साथ घण्टा लटक रहा था। उस घण्टेको कई सालोंसे वही बजाता आया है, अब कलसे उसे भी कोई दूसरा बजाएगा। स्कूलका बड़ा दरवाज़ा हर रोज़ वही खोलता था, वही बन्द करता था; अब यह काम भी कोई दूसरा करेगा। उसकी चारपाई-पर अब कोई दूसरा सोएगा।

गङ्गासिंहकी आंखोंके सामने अंधेरा-सा छा गया। क्या करे, क्या न करे? उसे कुछ सूझता न था। उसने स्कूलके प्यारको कच्चा तागा समझा था, मगर वह लोहेकी ज़ञ्जीरसे भी मज़बूत निकला, जिसे तोड़ना हाथीकी शक्तिसे भी बाहर था।

[९]

इतनेमें छुट्टीका घण्टा बजा। गङ्गासिंहने उसे सुना और उसकी आंखोंमें पानी आ गया। यह घण्टा इस बातका सबूत था कि उसकी गद्दीपर

किसी दूसरेने अधिकार जमा लिया है, वरना इतना बड़ा अन्धेर कभी न होता कि वह स्कूलमें मौजूद हो और उसकी मुंगरीको कोई दूसरा हाथ लगा जाए। मगर घण्टा बज रहा था और गङ्गासिंह सुन रहा था, और उसकी हरएक चोट जितने ज़ोरसे घण्टेपर पड रही थी, उससे दुगुने ज़ोरसे गंगासिंहके दिलपर लगती थी, और उसकी आंखों के आसू उसके बूढे गालोंपर बह रहे थे।

एकाएक वह वहांसे चला और हेडमास्टर गुलाम मसीहके दफ्तरमें जा पहुंचा। वहां वे अकेले बैठे थे? गङ्गासिंहने जाते ही उनके पांव पकड़ लिए और रोने लगा। मगर थोड़ी देर बाद जब कमरेसे बाहर निकला, तो उसके चेहरेपर आनन्दकी आभा खेल रही थी, मानो उसने खोया हुआ ख़ज़ाना पा लिया है। वह दरवाज़ेसे बाहर आकर कुछ देर सोचता रहा, इसके बाद शान्ति और सन्तोषसे अपने पुराने स्टूलपर बैठ गया।

उधर हाल कमरेमें स्कूलके विद्यार्थी और अध्यापक जमा थे और लाला कृपासागर लड़कोंको शोर मचानेसे रोक रहे थे। मगर उनकी कोई सुनता न था।

सहसा रामधन आकर गङ्गासिंहक सामने खड़ा हो गया, और बोला—तुम कहां चले गए थे? मैं तुम्हें सारे स्कूलमें ढूंढ आया हूं।

गङ्गासिंहने जवाब दिया—तुमने मुझे अपनी जगहपर क्यो न ढूंढा? अगर सीधे यहा आ जाते, तो मुफ्तकी परेसानीसे बच जाते। कहो क्या बात है?

रामधन—अरे! तुम तो ऐसी बातें करते हो, जैसे कुछ मालूम

ही नहीं है। चलो, हालमें सब लोग तुम्हारी राह देख रहे हैं। लाला किरपासागर कहते हैं, जल्दी बुलाओ।

गङ्गासिंह—उनसे कहो, सबसे कह दें जलसा नहीं होगा।

रामधनको आश्चर्य हुआ–तुम कहीं पागल तो नहीं हो गए आज?

गङ्गासिंह—पागल हो गया था, मगर समयपर होश आ गया। अब मैं कहीं न जाऊंगा। जहां पचास साल गुज़र गए, वहां दस साल और भी गुज़र जाएंगे।

रामधन—क्या सच?

गङ्गासिंह—यहां शायद दसके पन्द्रह साल भी जी जाऊं वहां बेकार रहकर दो ही सालमें खतम हो जाता।

रामधनने छेडना शुरू किया–अरे! तो क्या अब हरिद्वार न जाओगे?

गङ्गासिंह—मेरा स्कूल मेरा हरिद्वार है। जो सन्तोष मुझे यहां मिल सकता है, वहां नहीं मिल सकता।

रामधन—वहां साधू महात्माओंके दरसन करते, तो जनम सफल हो जाता।

गङ्गासिंह—मेरे लिए तुम लोग भी साधू महात्माओंसे कम नहीं हो, बल्कि मेरा ख्याल है, तुम उनसे भी बढ़कर हो। यह प्यार, यह पवित्रता, यह सादगी वहां कहां?

रामधनकी आंखोमे आंसू आ गए, बोला–हेडमास्टरने माना लिया है?

गङ्गासिंह—मैंने कहा था, अगर आपने न माना तो मै अपनी

जान दे दूंगा। मानना पड़ा। और क्या करते, सिर्फ इतना कहा कि जल्सेका इन्तजाम हो चुका है, उसका क्या करूं ?

रामधन—तो जाकर कह दूं, गङ्गासिंहने इरादा बदल दिया ?

गङ्गासिंह—हां कह दो। मगर पहले एक बात बताओ। तुम्हें कुछ दुःख तो नहीं हुआ ?

रामधन—दुःख काहेका ?

गङ्गासिंहने ज़रा रुककर कहा— अगर मैं चला जाता, तो मेरी जगह तुम्हें मिल जाती। तनख़ाह बढ़ जाती, ओहदा बढ़ जाता। अब कुछ भी न होगा।

रामधनने क्रोधसे जवाब दिया—जाओ! मैं तुमसे नहीं बोलता। तुम मुझे ऐसा नीच समझते होगे, मुझे यह आशा न थी। इतने साल इकट्ठे काम किया, मगर तुमने मुझे अभी तक न पहचाना।

"गङ्गासिंह!"

हेडमास्टरने बुलाया। गङ्गासिंह अन्दर गया तो हेडमास्टर कुछ सोच रहे थे। गङ्गासिंहको देखकर बोले— देखो! मैंने फ़सला किया है, यह जल्सा मुल्तवी न किया जाए, न तुम्हारे तोहफ़े रोके जाएं। तुम जल्सेमें चलो। मैं कह दूंगा कि यह जलसा गङ्गासिंहकी बिदाइका नहीं, उसकी नौकरीके पचास साल पूरे होनेकी खुशीका है।

गङ्गासिंह आसमानपर उड़ा जा रहा था।

लड़ाई

[१]

दयाशंकर दफ्तरसे लौटे तो उनके हाथ में कई तस्वीरे थीं। मुस्कराकर रेवतीसे बोले—बूझो तो! हमारे हाथमें क्या है?

रेवती एक पुस्तक देख रही थी, उसे मेजपर रखकर बोली... अगर बूझ लूं तो क्या हारोगे?

दयाशंकर—पांच रुपये।

रेवती—तो हम नहीं बूझते। पांच रुपयेके लिय कौन माथा पच्ची करे। इससे तो यही अच्छा है कि हम अपनी पुस्तक पढ़ें। हां अगर पन्द्रह बीस रुपयेकी बात हो तो आदमी कोशिश भी करें।

दयाशंकर—चलो! बीस रुपये ही सही। लड़ाओ दिमाग़।

रेवती उठकर दयाशंकर के पास आई। दयाशंकरने तस्वीरें उलटकर मेज़पर रख दीं और कोट उतारते हुए कहा—हाथ लगानेकी शर्त नहीं!

रेवती अपनी साढ़ी सम्भालते हुए वहीं रुक गई।

दयाशंकरने कोट खूंटीके साथ लटका दिया और नेकटाई खोलने लगे।

रेवती सोच रही थी; सहसा उसने प्यारकी रसीली चितवनसे पतिकी ओर देखा और बच्चोंकी-सी चंचलतासे तस्वीरोंकी तरफ बढते हुए बोली—मेरी तस्वीरें हैं।

यह कहकर उसने तस्वीरे उलटकर देखीं तो चौंक पडी। यह उसकी तस्वीरें न थीं, तीन स्त्रियोंकी तस्वीरें थीं। तीनों जवान थीं तीनों सुन्दर और चंचल थीं। तीनों की आंखोंमें ज़हर भरा था।

रेवती कभी तस्वीरोंकी तरफ देखती थी कभी अपने पतिकी तरफ़ मानों आंखों ही आखोंमें कहती थी–तुम तो ऐसे न थे। यह आगकी पुडियां कहासे उठा लाए?

दयाशंकरने आराम कुरसीपर लेट कर सिगार सुलगाया और कह कहा लगाकर बोले—हार गई।

मगर रेवती इस समय वह हंसमुख जिन्दा दिल रेवती न थी, जो बात बातपर हसती थी और हंसाती थी। इस समय वह विचार शील गंभीर रेवती थी, जो एक एक बात को तोलती थी और उसका सार निकालती थी। उसने पतिकी तरफ आखें उठाकर पूछा....यह किनकी तस्वीरें है!

दयाशंकर—औरतोंकी!

रेवती—यह तो मैं भी देख रही हूं कि औरतोंकी तस्वीरें हैं, जानवरोंकी नहीं। मेरा मतलब यह था कि किन औरतोंकी?

दयाशंकर—तुम्हें क्या मालूम होता है!

रेवती—अब मैं क्या बताऊं, मुझे क्या मालूम होता है? आप लाए हैं, आप जानते होंगे। हा शक्ल सूरत देखकर इतना कह सकती हूं

कि भले घरकी औरतें नहीं मालूम होतीं, न इस योग्य हैं, कि किसी भले घरमें इनकी तस्वीरें रखी जाए।"

दयाशंकरने मुस्कराकर कहा—"यह मामूली औरतें नहीं हैं। सिनेमा संसारकी रानियां हैं। इनमें से एक दो हजार महीना कमाती है। दूसरी बाइस सौ और तीसरी जो सबसे नीचे है वह पांच हजार कमाती है। हमारा सिनेमाका व्यापार आज इन्हीं देवियोंकी बदौलत चल रहा है। पत्रोंमें इनकी कलापर लेख प्रकाशित होते हैं। लोग इनसे मिलने जाते हैं। इनकी तस्वीरें अपने घरोंमें लगाते हैं।

रेवती—लगाते होंगे मगर मैं तो कभी न लगाऊँ; न लगानेकी इजाज़त दूं।

दयाशंकर—मेरे कमरे में भी नही ?

रेवती—नहीं।

दयाशंकर—तो हमारी मेहनत बिलकुल बेकार गई? हम तो बड़े शौक़से लाए थे कि कमरा सजाएंगे।

रेवती—यह आपकी भूल थी

दयाशंकर अबतक हंस रहे थे। यह जवाब सुनकर गम्भीर हो गए और बोले—मगर इसमें भूलकी क्या बात है। मामूली तस्वीरें हैं।

रेवती भी गम्भीर हो गई—आपके विचारमें मामूली होंगी, मेरे विचारमें मामूली नहीं हैं। और यह तस्वीरें मामूली हों भी तो क्या? इनके पीछे जो मनोवृत्ति काम कर रही है, वह मामूली नहीं हैं।

दयाशंकर उठकर खड़े हो गए और बोले—तुम कलाकी वस्तुओंसे भी डाह करती हो, यह तुम्हारी तंगदिली है।"

रेवती--अपने घरमें आगकी लपटें दाखिल होते देखूं और मुस्कराती रहूं, इतनी उदारता मुझमें नहीं है। न मैं इसे पसन्द करती हूं।

दयाशंकरने ईंट दे मारी....तुम्हारे न पसन्द करने से क्या होता है? मुझे तो पसन्द हैं और मैं कहता हूं मैं इन्हें अपने घरमें लगाऊंगा।

रेवतीने ईंटका जवाब पत्थरसे दिया....बहुत अच्छा! लगा लीजिए, लेकिन अगर मैं अपने बापकी बेटी हूं तो इन्हें उतरवाऊंगी!

[२]

एक सप्ताह बीत गया।

दयाशंकरने तीनों तस्वीरें अपनी बैठकमें लगा दी हैं। रेवती उन्हें देखती है तो उसके दिलमें आग जल उठती है। मगर वह कुछ कहती नहीं, न तस्वीरें उठाकर बाहर फेंकती हैं। डरती है कि मैंने तस्वीरें उतार दीं तो बात बढ़ जायगी। परन्तु पतिसे तनी तनी रहती है। मुहसे बोलती नहीं है। दयाशंकरको भी उसे बुलानेकी हिम्मत नहीं होती। समझते हैं, कि मैंने बात की और यह गरजी। इसलिए दोनोंकी बोलचाल बन्द है। पहले दयाशंकर खाना खाते थे तो रेवती सामने आकर बैठ जाती थी और बातें करती थी। अब वह अपने कमरे से बाहर नहीं निकलती। नौकर मेजपर खाना रख जाता है, दयाशंकर खाकर चले जाते हैं। शामको दफतरसे लौटते हैं तो भी उठकर उनका कोट हैट नहीं पकडती। खुद उतारें खुद रखें। नौकर

चाय ला देता है, पलिते है, उसके बाद मोटर साइकलपर बैठकर क्लबको चले जाते हैं। मेल मिलाप दोनों चाहते है, झुकना कोई भी नहीं चाहता। दयाशंकर चाहते है, रेवती क्षमा मांगे, रेवती चाहती है दयाशंकर तस्वीरें उतार दें।

एक दिन रेवतीने अपना रोना अपनी सहेली गीता के सामने रोया और कहा...बताओ, मै ने क्या बुरा कहा था। घरमें इन तस्वीरोंकी क्या ज़रूरत है?

गीताने आगपर तेल छिडका...बहन! दुनियाकी हवा ही बदल गई है। पहले लोग घरोंमें महापुरुषोंकी तस्वीरें रखते थे, अब एक्ट्रेसोंकी तस्वीरें चलने लगीं। पूछो, इन्होंने कौनसे तीर मारे हैं? राम, कृष्ण, शिवाजी, प्रताप, गुरू गोविन्द सिंह, दयानन्द, गान्धिकी तस्वीरें उड़ गईं, जिन्होंने देसके लिए अपने जीवन दे दिए हैं। उनका स्थान लेनेके लिए आईं ऐक्ट्रेसें। जिनकी सबसे बड़ी सेवा यह है कि मुँहपर पाउडर मलती हैं और कैमरेके सामने खड़े होकर याद किए हुए दो शब्द बोल देती हैं।"

रेवतीने यह बातें सुनी, तो उसका धीरज बंध गया। बोली—"मैंने भी तो यही कहा था।"

गीता—"अडी रहो, अपने आप झुकेंगे"

रेवती—"पूरा सप्ताह बीत गया है!"

गीता—"तो क्या हो गया? तुमसे ज्यादा वे घबरा रहे होंगे। अगर तुम इस समय दब गईं, तो वे तुम्हे और भी दबायेंगे। आज उनकी तस्वीरें लाए है, कल उनकी दावत करेंगे। कहांतक सहोगी?"

यह बात रेवतीकी समझमें भी आई।

उधर दयाशंकरने भी दफ्तरमें अपने एक मित्र बृजनारायणको सारी बात सुनाई और पूछा—"बताओ ! मैंने कौन सा पाप किया था। तिलका पहाड बना दिया।"

बृजनारायणने दयाशंकरकी हिमायत करते हुए जवाब दिया-"तुम्हारा जरा भी दोष नहीं। दोष सारा भाभीका है। और भाभीपर ही क्या निर्भर है, सभी स्त्रियोंका यही हाल है। समझती सोचती खाक भी नहीं बातें करनेको शेर हो जाती है। पूछो ! अगर हमने किसी कलाकारकी तस्वीरको कमरेमें लटका लिया, तो इसमे उनका क्या बिगड गया। एक योरप और अमरिकाके लोग हैं कि अपने कलाकारोंको महापुरुष समझकर उनकी पूजा करते हैं।"

बृजनारायणकी बातोंने दयाशंकरके डांवांडोल मनका स्थिर कर दिया, जरा हिम्मतसे बोले—"मैने भी तो यही कहा था। मगर वह सुनती थोडी हैं !"

बृजनारायण—"अडे रहो ! अपने आप झुकेंगी।"

दयाशंकर—"जीना मुश्किल हो गया है।"

बृजनारायण—"तो मरे क्यों जाते हो ? तुमसे ज्यादा तो वे घबरा रहीं होंगी। अगर तुमने इस समय हथियार फेंक दिए तो वे और भी शेर हो जायेंगी ! आज कहती है तस्वीरें न लगाओ; कल कहेंगी, घरसे बाहर ही न निकलो। कहातक मानोगे ?"

दयाशंकरको इस युक्तिमें ज़ोर मालूम हुआ।

दोनों फिर अड गए। सुलहका दिन आते आते रह गया। अब यह साधारण, पति पत्नीका मन-मुटाव न था, सिद्धान्तका संग्राम था जिस-

पर उनका भावी जीवन निर्भर था। अब जो जीतेगा, जीवन भर उसीकी चलेगी। जो हारेगा जीवन भर वही दबेगा।

मगर कुछ ही दिनोंके बाद दोनों फिर ढीले हो गये और रेवतीका मन तो मिलापके लिए अधीर हो उठा। दयाशंकर बाहर चले जाते थे। उनके लिए दफतर था, मित्र थे, क्लब था। रेवतीके लिए घरको छोडकर कुछ भी न था। वह उस घरमें भी प्रसन्न थी। वह उसी जगह हंसती, चहकती, नाचती फिरती थी। मगर अब वह घर भी घर न था, एक मकान था, बल्कि कैदखाना। रेवती सारे सारे दिन अपने पलंगपर पडी रहती और ठण्डी आहें भरा करती। पहले वह दयाशंकरके दफतर चले जानेके बाद कभी किसी सहेलीके यहां चली जाती थी, कभी किसी सहेलीको अपने यहां बुला लेती थी। अब न कहीं जाती थी न किसीको बुलाती थी। अकेली पडी रहती और सोचती थी ऐसे कबतक चलेगा? अब वह प्यारकी एक नजर लिए तरस रही थी, प्यारके एक शब्दके लिए सटपटा रही थी।

[३]

सांझका समय था। दयाशंकर दफ्तरसे लौटे और कपडे बदलकर चायपर बैठ गये। रेवतीके मनमें विचार आया, चलूं मैं बुला लूं। जिससे ब्याह किया है, जिसके हाथ जीवन सौंपा है, उसके साथ अकड कैसी? और फिर यह लडाई है, जुदाई तो नहीं, जिसका अन्त ही न हो। पति-पत्नीमें झगडा भी होता है, विवाद भी होता है, परन्तु एक दूसरेके शत्रु थोडे ही बन जाते हैं। नदीकी

लहरोंकी तरह अभी ल ते है, अभी गले मिल जाते है । आख़िर किसी न किसीको तो झुकना ही पड़ेगा। अगर दोनों अकड़े रहें तो जहां एक बार-लड़ाई हुई वहां फिर सुलह ही न हो। और कौन-सा घर है, जहा झगड़े नहीं होते? रेवतीने उठकर मुँह धोया, बाल बनाए, नई साढी पहनी और रूठे हुए देवताको मनाने चली। मगर शर्मने पाव रोक दिए। दिल चलता था, पांव न चलते थे। पाव चलते थे, दिल न चलता था। व्याही हुई बहू, आज फिर नई दुल्हन बन गई, जिसे पतिके सामने चलते हुए भी शर्म आती है। क्या करे क्या न करे। रेवती खडी थी, बैठ गई, और सोचने लगी अगर वह यहां आकर एक बार सामने खड़े हो जायं तो सारा झगड़ा एक क्षणमें निपट जाय। मगर उनका दिल पत्थर है। इस तरह साल बीत जाय, तब भी न आयेंगे। प्रेमकी बात है। जिसे प्रेम होता है वह तड़पता है। जिसे प्रेम नहीं होता वह काहेको तड़पेगा?

इतनमें रेवतीने सुना, मरदाने कमरेमें दयाशंकरने नौकरको बुलाया और कहा—देखो कल इतवारको एक मेहमानका खाना है। क्या—क्या बनाओगे?

नौकरने जवाब दिया—जो हुक्म दें, बन जायगा।

दयाशंकर—मैं क्या हुक्म दूं। तुम बोलो।

नौकर—मटर और पनीर बना लूंगा। आलू और गुच्छियां बना लूंगा। गोभी बना लूंगा। उड़द की दाल बना लूगा, और टमाटरका सलाद और फिरनी और पापड़ चटनी—और—

दयाशंकर—आलू, गुच्छियां, गोभी, उड़दकी दाल सब एक जैसी चीज़ें हैं।

नौकर—तो आप जाइए। मैं बीबीजीसे पूछ लूंगा।

रेवतीके मनमें आशाने गुदगुदी की। सोचा, आख़िर इन्हें मेरी मदद की ज़रूरत पड़ी।

दयाशंकर—अब ज़रा-ज़रा-सी बात भी तुम बीबीजीसे पूछने लगोगे, तो तुम किस रोगकी दवा हो?

रेवतीके दिलमें किसीने भाला चुभो दिया। वह झल्लाई हुई बाहर निकल आई और सोचने लगी, अब मैं इतनी बुरी हो गई, कि मेरा नाम भी नहीं सुनना चाहते। नौकरने मेरा नाम लिया तो उसे कैसी बुरी तरह डांट दिया। इतना भी न सोचा कि नौकर दिलमें क्या कहेगा? एक मैं हूं कि सुलहको मरी जा रही थी। चलो अच्छा हुआ। इनके मनकी थाह मिल गई। अगर मेरे बिना इनका निर्वाह हो सकता है, तो इनके बिना मेरा भी निर्वाह हो सकता है। अब ज़रा भी परवाह न करूंगी। ग्रामोफ़ोन है, रेडियो है, पुस्तके हैं। फिर भी मन न बहलेगा तो न बहले। अब इनके पांवपर गिरनेसे तो रही। ऐसी ही बातों से तो मर्द सिरपर चढ़ जाते हैं।

रेवतीको रातभर नींद न आई। उसे अब दयाशंकरसे सुलह करनेकी ज़रा भी चाह न थी। सोचती थी आज अगर रसोइया बीमार हो जाय तो मज़ा आ जाय। सुबह उठकर कह दे; साहब! आज मुझसे काम नहीं हो सकता, कोई और प्रबन्ध कर लीजिये। घबरा जायं, परेशान हो जायं। झक मारकर कहें, रेवती! अब तो लाज तेरे ही हाथ है। रखोगी तो रहेगी, न रखोगी तो न रहेगी। उस समय वह साफ़ इन्कार कर देगी। कहेगी मुझे माफ़ कीजिए। अब अगर

ज़रा-ज़रा काम मुझे ही करना होगा तो यह नौकर किस रोग की दवा है।

मगर दिन चढ़ा और रसोइया बीमार न हुआ, उठकर काम करने लगा। रेवतीकी मनकी मनहीमें रह गई। ज्यों-ज्यों काम होता जाता था, रेवतीका क्रोध बढ़ता जाता था। यहांतक कि ग्यारह बजेके लगभग सब कुछ तैयार हो गया, और दयाशंकर मोटर लेकर मेहमानको बुलानेके लिये चले गए।

रेवतीने रसोई-घरमें जाकर भाजी, तरकारियां देखीं तो उसे एक-एक चीज़में सौ सौ दोष दिखाई दिए। मगर इसपर उसे क्रोध नहीं आया। उल्टे खुशी हुई। अगर आज भाजियां जल जातीं तो और भी खुशी होती। यहासे चलकर वह खानेके कमरेमें पहुंची। वहां दूसरा नौकर दरी बिछा रहा था। रेवतीको आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—अरे काली! यह क्या? मेज़-कुर्सियां काहेको उठा दीं?

काली दरीका कोना ठीक कर रहा था। रेवतीकी तरफ़ देखकर अदबसे खड़ा हो गया और बोला—साहबका हुक्म है, मेज़-कुर्सियां हटा दो।

रेवती—अच्छा! तो मालूम होता है, मेहमान कोई हिंदुस्तानी है और हिंदुस्तानी भी ऐसा वैसा नहीं, कोई ख़ास आदमी है, जिसका साहबको इतना ख्याल है।

काली—कहतें थे, कोइ स्वामीजी हैं। सारा देस उनकी इज्जत करता है। सारी दुनिया उन्हें मानती है। वे मेज कुर्सीपर कभी भोजन नहीं करते। जमीनपर बैठकर खाते हैं। मांस मच्छी भी नहीं खाते।

रेवती—मगर यह तस्वीरें देखकर तो ज़रूर निहाल हो जाएंगे।

काली—अरे नहीं बीबीजी। साहब हुक्म दे गए है कि इन तसवीरोंको भी उतार दो। अगर स्वामीजीने देख लिया तो ग़ज़ब हो जायगा, अन्धेर हो जायगा। बड़ी ताकीद कर गए हैं।

रेवतीके मनमें एक विचार पैदा हुआ। बोली—देख काली! यह तस्वीरें न उतारना। समझ गए? यह तस्वीरें उतारनेकी कोई ज़रूरत नहीं। मैं चाहती हूं स्वामीजी भी अपने शिष्य महाराजका शौक़ अपनी आंखोंसे देख लें।

काली—अगर तस्वीरें न उतरीं, तो मेरा चमड़ा उतरेगा।

रेवती—और अगर तूने तस्वीरें उतार दीं, तो तेरा चमड़ा मैं उतारूंगी।

काली अजमंजसमें पड़ गया। बोला—यह तो बड़ी मुश्किल है। इधर भी फजीता, उधर भी फजीता। मगर बीबीजी! आप मारेंगी भी तो हड्डी पसलीका खयाल करके मारेंगी। साहब मारेंगे तो जरा ख्याल न करेगे। उन्हे गुस्सेमें कुछ नजर नहीं आता।

रेवतीको हंसी आ गई। नौकरने जो कुछ कहा था, वह ग़लत न था। चुपचाप अपने कमरेमें चली गई और बैठकर एक पुस्तक पढ़ने लगी। मगर उसका मन पुस्तकमें न था।

थोड़ी देर बाद उसने देखा कि कालीने तस्वीरें उतारकर उसके कमरेमें रख दी हैं और आप रसोईके बाहर बैठा हुक्का पी रहा है। अन्धेको आंखें मिल गई। रेवतीने तस्वीरे उठाई और कालीसे छिप छिपकर दबे पांव, दयाशंकरके कमरेमें चली गई।

दीवार घड़ीने साढ़े ग्यारह बजाये, तो इधर दयाशंकर स्वामीजीको लेकर मकानकी सीढियोंपर चढ रहे थे, उधर रेवती तस्वीरें खानेके कमरेमें लगाकर खुश खुश अपने कमरेकी तरफ़ जा रही थी।

[४]

स्वामीजी कमरेमें आए तो उनकी नजर सबसे पहले तस्वीरोंपर पड़ी। जरासी देरके लिए उनके माथेपर बल पड गए। इसके बाद उन्होंने अपने आपको संभाल लिया और आसनपर बैठ गए। केवल इतना ही कहा–मुझे तुम्हारे घरमें ऐसे चित्र देखनेकी आशा न थी तुम भी उसी रौमे बह गए, जिसमें सारी दुनिया बह रही है।

दयाशंकरके मुंहसे जवाब न निकला। जानते थे कि मैंने एक बात की तो ये चार सुना देंगे। वे उन्हें बचपनसे गुरु मानते आए थे। वे सारी दुनियाके सामने बोल सकते थे, मगर उनके सामने न बोल सकते थे। खरे और नि.स्वार्थी आदमीके सामने हम झूठ भी नहीं बोल सकते। दयाशंकर चुपचाप बैठ गए मगर मनमें खौल रहे थे, कि इस कम्बख्त कालीने मुंहपर स्याही मल दी। कितनी ताकीद करके गया था, सब भूल गया। अच्छा! स्वामीजी जा लें तो इसकी हड्डियां तोड़ं। मैं भी याद करूंगा, यह भी याद करेगा।

जब स्वामीजी खाकर चले गए तो दयाशकरने कालीको बुलाया और तस्वीरोंकी तरफ़ इशारा किया। कालीका लहू सूख गया। सहम कर बोला—हजूर मैंने तो उतार दी थीं।

दयाशंकरने आस्तीनें चढ़ाकर कहा—क्या कहा?

काली—हजूर ! मैंने तो उतार दी थीं।

दयाशंकरने उठे हुए हाथको रोक लिया और बोले—तुम जानते हो, क्या कह रहे हो ? अगर तुमने उतार दी थीं, तो यह फिर यहा दीवारपर कैसे चली आईं ? अपने आप तो आ नहीं सकतीं।

काली कुछ देर सोचता रहा कि कहूं या न कहूं ? आखिर बोला—हजूर ! बीबीजीने लगा दी होंगी।

दयाशंकर—बीबीजीने ?

काली—हजूर ! क्या अरज करूं मुझसे कहती थीं, रहने दे, उतारनेकी कोई दरकार नहीं है। तू तसवीरें उतारेगा तो मैं तेरा चमड़ा उतार दूंगी।

दयाशंकर—और तूने मान लिया ? तो पहले झूट क्यों बकता था कि तूने उतार दी थीं ?

काली—नहीं सरकार ! मैं झूठ नहीं बोलता। मैंने उतार दी थीं। आप बीबीजीसे तो पूछिये। जरूर उन्होंने फिर लगा दी होंगी।

दयाशंकर झल्लाये हुए रेवतीके कमरेमें चले गए और बाले—क्या यह तस्वीरें तुमने लगाई थीं ?

रेवती एक किताब पढ़ रही थी। और पढ क्या रही थी पढ़नेका बहाना कर रही थी, सिर उठाकर बोली—कौन-सी तस्वीरें ?

दयाशंकर—जिनम तुम्हें दुनिया भरकी बुराइयां दिखाई देती थीं।

रेवतीका कलेजा धक धक करने लगा, मगर सँभलकर बोली—मैं नहीं समझी, आप क्या कह रहे हैं ?

दयाशंकर—क्यों झूठ बोलती हो ? तुम्हारा चेहरा कह रहा है, तुम सब कुछ समझती हो।

रेवतीने मुंह फुलाकर जवाब दिया—आप तो हवामें तीर चलाते हैं। कोई क्या करे ?

दयाशंकरने रेवतीकी तरफ़ मनको भी टटोलनेवाली आंखों से देखा और कहा—तो साफ़ क्यो नहीं कहती कि तुम ने लगाई हैं। करती भी हो, छिपाती भी हो।

रेवती—मुझे छिपानेकी क्या पर्वा है ? एक बार नहीं लाख बार कहती हू कि मैंने लगाई हैं, मैंने लगाई हैं।

दयाशंकर—मगर जब मैंने उतरवा दीं थीं, तो तुम लगानेवाली कौन होती थीं ?

रेवती—और जब मैं नहीं लगाना चाहती थी, तो आप लगानेवाले कौन होते थे ?

दयाशंकर—मैं घरका मालिक हूं। यहां मेरी चलेगी।

रेवती—मै भी घरकी मालिकिन हूं। यहां मेरी भी चलेगी। अब वह जमाना गुज़र गया, जब औरतें मर्दोंकी हर एक बातको सिर झुकाकर मान लेती थीं। अब जो बात मानने लायक़ होगी मानेंगीं, न मानने लायक होगी न मानेंगीं।"

दयाशंकर ज़रा नरम पड गए। बोले—मगर इसमें न माननेकी क्या बात थी ? तुम तो आप चाहती थीं, कि यह तस्वीरें यहां न रहे!"

रेवती—मैं सीधी ज़रूर हूं, मगर मूर्ख नहीं हूं। क्या आपने मेरे लिए तस्वीरें उतार दी थीं ? बिलकुल नहीं। स्वामीजी

आ रहे थे हुक्म दे दिया उतार दो। स्वामीजी चले जाते, हुक्म मिल जाता लगा दो। मैंने सोचा कलाकी चीजें हैं, स्वामीजी क्यों न देखें, लगा दीं। क्या पाप किया ? देखकर प्रसन्न हो गए होंगे।

दयाशंकर—प्रसन्न ? उनके माथेपर बल पड गए थे।

रेवती—बड़े तग दिल हैं। एक यूरोप और अमरीकाके लोग, हैं कि ऐसी स्त्रियोंको मान पत्र देते हैं, उनकी पूजा करते हैं। एक हम हैं कि उनकी तस्वीरें भी नहीं देख सकते।

दयाशंकरने जवाब न दिया। दिलमें सोचने लगे, स्त्रियोंको पढ़ाना बुरा है। रेवती सोचती थी, अब इसका जवाब क्या देंगे ?

दयाशंकर कमरेसे बाहर चले गए। रेवती वहीं बैठी रही।

इतनेमें कालीने आकर कहा—साहब खानेपर आपका इंतजार कर रहे हैं।

रेवतीको अपने मनमें आनन्दकी एक लहर उठती हुई मालूम हुई। उसे दबाकर बोली—जाकर कहो,। आप खालें, मैं जरा देर बाद खाऊंगी।

कालीसे यह जवाब सुनकर दयाशंकर खुद आए और मुस्करा कर बोले—अब यह रूठी रानी, मानेगी भी, या रूठी ही रहेगी ?

रेवतीने सिर न उठाया। ज़मीनकी तरफ़ देखते हुए जवाब दिया—जो रानी हो वह जवाब दे। हम तो गुलाम हैं।

दयाशंकर—वाह तुम गुलाम कैसे हो ? घरमें बैठी राज करती हो। जो मुंहसे निकलता है वही पूरा हो जाता है। आसमान सिरपर उठा लो, जो कोई भी बात टल जाए। गुलाम हम हैं, जिन्हें बाहर हाकिमोंकी धौंस

सहनी पड़ती है घरमें स्त्रीकी। हम तो चाहते हैं, हमें दूसरी बार भग-वान स्त्रीका जन्म दे। मर्द कमाएगा खिलाएगा, और अगर रूठ गए तो झक मार कर मनाएगा।

रेवती—तस्वीरें वहीं रहेंगी ना? क्यो?

दयाशंकर—(मजाकसे ठण्डी आह भर कर) न बावा। अग श्रीमती कहेगी तो मर्द तस्वीरोंको उतारकर तीसरी छतसे नीचे फेंक देगा।

रेवतीके मनकी मुराद पूरी हो गई। उसने उठ कर पतिका हाथ थाम लिया और उसकी तरफ़ प्रेमकी दृष्टिसे देखा। दयाशंकरकी आंखें खुशीसे चमकने लगीं।

आप बीती

उन दिनों भी लोग मेरी किताबों को इसी शौक़ से पढ़ते थे। मेरी कहानियों के लिए लोग उस समय भी इसी तरह बेचैन रहते थे; लेकिन मेरी माली हालत कुछ सन्तोष-जनक न थी। मिल जाता, तो खा लेता था, न मिलता, तो न खाता था; मगर इसे स्वतन्त्रता कहिए या मिथ्या अभिमान—मैंने अपनी हालत को किसी पर प्रकट नहीं होने दिया। अंदर बैठकर चाहे घंटों रोता रहता मगर जब बाहर निकलता, तो हँसता हुआ निकलता—ऐसा कि किसी को शक भी न हो सके। भाग्यवश मेरी स्त्री भी मेरे ही विचार की हैं; बल्कि मुझसे भी दो क़दम आगे—साहस, दृढ़ता और धैर्य-सन्तोष की जीती-जागती तसवीर। मैं घर में बैठकर रो लेता हूं, वह घर में भी नहीं रोतीं। मैंने अँधेरे-से-अँधेरे समय में भी उनके चेहरे पर मुस्कराहट की रोशनी देखी है। उस मुस्कराहट ने मेरे निराश जीवन के कंटकाकीर्ण मार्ग को पुष्पमय बना दिया है। मैं घबराता हूं, वह मुझे सँभाल लेती है। मुझे अक्सर ख़याल आता है, कि मुझे कोई गहनों और कपड़ों की शौकीन स्त्री मिल जाती, तो क्या होता? होता क्या, ज़िन्दगी दूभर हो जाती। बाहर भी रोता, घर में भी रोता; लेकिन परमात्मा बड़ा कारसाज़ है। उसने हर बीमारी के साथ उसकी दवा भी पैदा कर दी है। मुझे लिखने की बीमारी दी, तो साथ ही दवा भी देदी।

[२]

एक बार ऐसा इतिफ़ाक़ हुआ कि हमें तीन दिन फ़ाक़े करने पड़े। मैं बिलकुल ही छूछा हो गया था, यह बात न थी। प्रकाशकों पर कई सौ रुपए निकलते थे; लेकिन वे कम्बख़्त देते न थे। कोई कहता—आज कुछ आया ही नहीं; कोई कहता—आज ख़र्च हो गया है। मैंने उनकी मिन्नतें कीं, धमकियां दीं, लड़ाई-झगड़ा किया, कहा—यह तुम्हारा ज़ुल्म है; सारी रक़म एक साथ नहीं दे सकते, तो थोड़ा-थोड़ा करके दे दो। तुम्हें भी तकलीफ़ न हो, मेरा भी काम चल जाय, लेकिन जनाब, कौन सुनता है। कहते—साहब कुछ दिनों की मोहलत दीजिए, पाई-पाई अदा कर देंगे। दुकानदार हैं, चोर तो नहीं हैं, कि आपके रुपए लेकर भाग जायँगे। एक दुकानदार ने यहाँ तक ज़ुल्म ढाया, कि हमारी आँखों के सामने चालीस रुपए में पत्नी के लिए बनारसी लहँगा ख़रीद लिया। कोई सफ़री एजेंट आ गया था। सस्ता देता था। ये महाशय मचल पड़े। हमने कुछ माँगा, तो कैश-बक्स उलटकर दिखा दिया, कि देख लीजिए, सब मिलाकर सवा तेरह आने बाक़ी हैं। फिर मुस्कराकर यह भी कह दिया कि घर में आटा न हो, तो ले जाइए। उस बेचारे को क्या मालूम था, कि मेरे घर में सचमुच आटा नहीं; बल्कि दो दिनों से पति-पत्नी फ़ाक़े कर रहे हैं। बच्चों को खिला देते हैं, आप पेट पर सब्र का पत्थर बाँधकर सो जाते हैं। हृदय ने स्वीकार न किया, कि अपनी माली हालत की कथा कह सुनाऊँ। सख़्त-सुस्त कहकर चला आया, कि, शायद कोई दूसरा दाता दे दे, लेकिन पता नहीं, उनकी बदनीयती थी, या हमारी बदनसीबी। किसीने एक पैसा भी न दिया।

अब हालत यह थी कि घर जाने को जी न चाहता था। सोचता था, पत्नी पूछेंगी—कुछ मिला, तो क्या कहूँगा। नेकबख्त ने सुबह के वक्त कहा था—आज तो सिर में चक्कर आते हैं। कुछ ज़रूर लाओ। और आज बच्चों के लिए भी कुछ नहीं है। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया था, कि आज ज़रूर लाऊँगा। जाकर धरना देकर बैठ जाऊँगा। कहूँगा—बाबा, मेरी रक़म दो, तो जाऊँ; वरना मैं यहीं बैठा रहूँगा। धन्नासेठ नहीं हूँ, कि तीन-तीन महीने हिसाब ही न मांगू। सब खाना-पीना इसी मे होता है। देखता हूँ, कैसे नहीं देते। और अब किसी ने कुछ भी न दिया था

मैं धीरे-धीरे मकान की दूसरी छत पर गया। जैसे विद्यार्थी परीक्षा मे फेल होकर घर आता है। नीचे गली में दरवाज़े के बाहर बच्चे खेल रहे थे। मै उनसे ऑखे चुराकर ऊपर गया और एक चारपाई पर लेटकर अपने जीवन के अंधेरे में ऑसू बहाने लगा।

श्रीमतीजी ऊपर थीं। मेरे पांव की आवाज़ सुनकर नीचे चली आईं और बिजली का बटन दबाते हुए बोलीं—बिजली क्यों नहीं जलाई?

मैंने उसकी तरफ़ बेबसी की निगाहों से देखा और गरदन झुका ली। ग़रीबी में आदमी किसी से आंखें मिलाते हुए भी शरमाता है।

वह सब कुछ समझ गईं; लेकिन उनके चेहरे पर निराशा न थी। वे मेरे पास आकर चारपाई पर बैठ गईं और बोलीं—जी थोडा क्यों करते हो। आज न सही, कल सही। आख़िर कभी तो भगवान सुनेगा! रोने से क्या होता है। समय भी नहीं कटता।

मैंने ठंडी आह भरकर कहा–आज तो बच्चों के लिये भी कुछ न होगा। क्या खाएगे ?

श्रीमती—उनका चिन्ता न करो। यह जो साथ के मकान में पंडित रहते हैं, उनकी स्त्री ने ज़बरदस्ती सबको चावल खिला दिए। मज़े से खेल रहे है।

मैं—तुम्हें सुबह चक्कर आ रहे थे, अब क्या हाल है ?

श्रीमती—अब तो नहीं आते। आपको तो वहम की बीमारी है। जरा कह दूँ, सिर में दर्द है, फिर सारा दिन यही सोचते रहेंगे। आखिर इस तरह किसी का काम चल सकता है क्या ? आप बाहर भी रोते रहे होंगे। मैं घर में भी हसती रही हूँ। शायद आप विश्वास न करें, मैं आज गाती रही हूँ। कई औरते आ गई थीं, खूब जलसा रहा।

मगर मेरा ध्यान उधर न था। श्रीमती ने मेरा कन्धा हिलाकर कहा–यह आप क्या सोच रहे हैं इस समय ?

मैं – सोचता हूँ, कल क्या होगा ?

श्रीमती—जो कल होगा, वह कल देखा जायगा। इस समय सोचने की ज़रूरत नहीं।

मैं—प्रेसवाले का बिल देना है। उसका आदमी आज नहीं आया?

श्रीमती मेरी आंखों में आंखें डालकर मुस्कराई और बोलीं–आया था, मैंने कह दिया—कुछ दिन सब्र करो। जब रुपये हाथ में आएँगे, भेज देंगे।

मैं—और मालिक मकान ?

श्रीमती—(इतमीनान से) वह तो नहीं आया, और आएगा,

तो मैं कह दूँगी, अगले महीने देंगे, इस महीने नहीं हैं। क्या कर लेगा? हमारे वी पी. भी तो वसूल होकर आनेवाले हैं। कितने रुपये के होंगे! होंगे पचास-एक के क़रीब?

मैंने दिल में हिसाब करके कहा—इससे ज्यादा के होंगे।

श्रीमती—मेरे खयाल में दो-तीन मनीआर्डर कल ज़रूर आएंगे।

मुझे जैसे सहारा मिल गया, पूछा—तुम्हें कैसे मालूम है?

श्रीमती—मेरा दिल कहता है, आएँगे। और देख लेना, ज़रूर आएँगे? (ताली बजाकर) आज रोज़ा है, कल ईद होगी। सेवइयाँ खायेंगे।

श्रीमती हँसती थीं; मगर मेरे चेहरे पर हँसी न थी। सोचता था, इस ग़रीब ने मेरे साथ ब्याह करके क्या सुख पाया? रोटियों को भी तरसती है। इसकी सहेलियाँ अच्छा खाती है, अच्छा पहनती हैं। इसे खाने को भी मयस्सर नहीं। यह दिल में क्या कहती होगी!

[३]

इतने में किसी ने नीचे से आवाज़ दी—महाशयजी!

मैं चौंक पड़ा। यह कौन है? मैं जवाब देते हुए भी डरता था कि कहीं कोई लेनदार न निकल पड़े। शायद मालिक मकान ही आ गया हो।

श्रीमतीजी ने कहा—बाबा जैमलसिंह हैं। बुला लो।

यह वही थे। मेरी जान-में-जान आई। ऊंची आवाज़ से कहा—आइए!

जैमलसिंह लाहौर के रईस बावा डिंगासिंह साहब के बेटे थे। लाहौर में ऐसा विद्या-प्रेमी दूसरा कम होगा। उन्हें पढ़ने-पढ़ाने का बेहद शौक़ था, और मेरी रचनाओं के तो आशिक़ थे। मेरी एक-एक कहानी उनको ज़बानी याद थी। मेरी एक-एक किताब उनकी लाइब्रेरी में थी। मुझे उन पर पूरा-पूरा भरोसा था। वह मेरी ख़ातिर सब कुछ करने को तैयार थे। अगर उन्हें मेरी गरीबी का ज्ञान होता, तो वह आटे की बोरियाँ, और घी के टीन भिजवा देते; मगर मैं लेखक हूँ, और लेखकों में आत्माभिमान की मात्रा ज्यादा होती है। मैं घर में रो सकता हूँ; मगर किसी के सामने अपनी ज़रूरत ज़ाहिर नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि बावा जैमलसिंह-जैसे प्रिय मित्र के सामने भी नहीं।

श्रीमती दूसरी चारपाई पर जा बैठीं। बावा साहब ने ऊपर आकर हम दोनों को नमस्ते की और मेरे पास चारपाई पर बैठकर कहा—आज रात को हम लोग नाटक देखने जा रहे हैं। आपको भी चलना होगा। यह लीजिए दर्जा खास का टिकट। आपकी सीट बुक हो चुकी है। मैं नौ बजे मोटर लेकर आऊँगा। तैयार रहिए। आज बड़ी भीड़ है।

मैंने हैरान होकर जैमलसिंह की तरफ़ देखा और धीरे से कहा—बावा साहब, मैं आज तो न जा सकूँगा।

बावा साहब ने अपने कोट की जेब से चार और टिकट निकाल कर मेरे सामने चारपाई पर फैला दिये, फिर मेरे हाथ में दियासलाई की

डिबिया दे दी। फिर पतलून की दोनों जेबों में हाथ डालकर खड़े हो गए और बोले—अगर न जाना चाहें, तो इन्हें जला दीजिए!

मैं परेशान था। रुखाई से बोला—बावा साहब, यह आपकी सरासर ज्यादती है। अगर आज मैं न जा सकूँ, तो क्या करूँ। इतने और आदमी हैं। उन्हें ले जाइए।

जैमलसिंह—मगर महाशयजी, आपके बग़ैर नाटक देखने का ख़ाक मज़ा आएगा! आप न जायँगे, तो डाक्टर, चौधरी, भटनागर कोई भी न जायगा, यह समझ लीजिए। यह कहकर जैमलसिंह ने अपनी घड़ी में से वक्त देखा और कमरे में टहलने लगे। श्रीमता ने मेरी तरफ़ देखकर इशारे से कहा—बावा साहब आस लेकर आए हैं। चले जाओ। मैंने निगाहों में जवाब दिया—मैं आदमी हूँ, क़साई नहीं हूँ, कि तुम यहां फ़ाका करो, मैं नाटक देखता फिरूँ!

बावा साहब आकर मेरे सामने खड़े हो गए और बोले—कहिए आपने क्या फ़ैसला किया? (श्रीमती की तरफ़ इशारा करके) क्या इनका ख़ौफ़ है! इनसे मैं इजाज़त लिए देता हूँ।

श्रीमतीजी ने जल्दी से कहा—मेरी तरफ़ से कोई ऐतराज़ नहीं है, बड़े शौक़ से जाएँ; बल्कि मैं तो ख़ुद कहने जा रही थी कि आप जाइए, ज़रा मन बहल जाएगा!

जैमलसिंह ने खुश होकर कहा—तो फिर यह कैसे न जाएंगे! इनको ज़रूर जाना होगा; वरना कोई भी न जायगा। लीजिए महाशयजी, सब टिकट आपही के पास रहेंगे। मैं सब लोगों को लेकर रातके नौ बजे आजाऊँगा। नमस्ते!

मैं मुँह देखता ही रह गया। जैमलसिंह खट-खट करते हुए नीचे उतर गए। मैंने टिकट उठाए और उनके पीछे भागा; लेकिन अभी दरवाज़े ही में था, कि उनकी मोटर चली गई। मैं चिल्लाता ही रह गया। जैमलसिंह ने मोटर से गर्दन निकाल कर कहा—नौ बजे आऊँगा, नौ बजे। तैयार रहना। मै ऊपर आया, तो श्रीमती ने हँसकर कहा—चले जाओ अब। क्या हरज है, ज़रा दिल बहल जायगा। यहाँ रहकर भी क्या कर लेते! वहाँ और न होगा, ज़रा हँस-खेल तो आओगे। यही ग़नीमत है।

मैं—मैं वहाँ तमाशा देखूँगा, तुम यहाँ बैठकर रोओगी, क्यों?

श्रीमती—वाह, रोने की क्या ज़रूरत है। बैठकर बाजा बजाऊँगी मज़े से। जब नींद आएगी, सो जाऊँगी।

मैं—मैं न जाऊँगा। यह जैमलसिंह की सरासर ज्यादती है। यहाँ तीन दिन से फाक़े कर रहे हैं, इन्हें नाटक की सूझ रही है।

श्रीमती—उस बेचारे को क्या मालूम, कि यहाँ यह हाल है। वह तो समझता है, महाशयजी को किसी चीज़ की परवा ही नहीं है।

मैं— मैं साफ़ कह दूँगा, आज मै नहीं जा सकता।

[४]

लेकिन जैमलसिंह जबरन घसीट कर ले गए। प्रेम की आज्ञा की अवहेलना किसने की है! चुपचाप मोटर में बैठ गया। साढ़े नौ बजे मैं दर्जा ख़ास में बैठा नाटक देख रहा था। किसे ख़याल हो सकता

था कि यह आदमी, जो मोटर में बैठकर आया है, सात रुपए के दर्जे में बैठा है, और जिसके लिए बाहर मोटर खड़ी है, तीन दिनों का भूखा होगा! मैं तस्वीर के उन दो रुखों को देखता था, और कभी हँसता था, कभी रोता था; मगर मित्रों मे से किसी को भी मालूम न था, कि मेरे दिल पर क्या कुछ बीत रही है।

बारह बजे पहला अंक समाप्त हुआ। हम लोग बातें करने लगे—

जैमलसिंह—अजब चीज़ है; न देखते, तो अफ़सोस रहता। क्यों महाशयजी?

मै—बेशक, नाटक बहुत बढ़िया है। सीन-सीनरी भी खूब है!

डाक्टर साहब—नाटक का प्लाट भी निहायत उम्दा है। विलायत में लोग सीन सीनरी नहीं देखते। प्लाट और एक्टिंग देखते हैं।

चौधरी— हमको सीनरी चाहिए, आप प्लाट देखिए। क्यों भटनागर!

भटनागर—(ज़ोर से हँसकर) हमको सब कुछ पसन्द है। मास्टर मोहन कमाल का एक्टर है।

मैं—क्या कहना, यह आदमी यूरोप में होता, तो सोने के महल खडे कर लेता।

एकाएक जैमलसिंह ने मेरी तरफ़ देखकर कहा—क्यों महाशयजी, कुछ खाओगे? मेरे पेट मे तो चूहे दौड़ने लगे!

मैं—तुम्हारे पेट में चूहे दौडते हैं, मेरे पेट में बिल्लियां कूदती है।

जैमलसिंह—तो आइए, बाहर चलें; देखें क्या मिल सकता है। अगर गरम-गरम पूरियाँ मिल जायॅ, तो मज़ा आजाए!

हम दोनों बाहर आए। पूरियॉ बन रही थीं। मगर ग्राहक,

इतने थे कि मुझे निराशा-सी होगई। जैमलसिंह ने भीड़ में घुसकर हलवाई से कहा—यार, तुम हमें अन्दर पूरियाँ नहीं भिजवा सकते ?

हलवाई ने पूरियों का दोना एक आदमी के हाथ पर रखा और दूसरे हाथ से पैसे गिन कर कहा—बाबूजी, यहाँ मिल जायँ, तब भी ग़नीमत समझिए। वहाँ कौन भेज सकता है। यह कहकर पैसे बर्त्तन में डाल लिए।

जैमलसिंह को तैश आ गया। बोले—फ़ी पूरी एक आना दूँगा, दर्जा ख़ास में भेजो।

हलवाई को हैरानी हुई।

जैमलसिंह—हाँ-हाँ, एक आना फ़ी पूरी! यह लो पाँच का नोट। बाकी लौटा देना।

हलवाई ने नोट लेकर अदब से कहा—आप चलिए, आपको वहीं पूरी मिलेगी।

जैमलसिंह—मगर उस्ताद, गरम-गरम मिले, जब मज़ा है।

हलवाई—जो ज़रा भी ठंडी होगी, उसके दाम काट लेना बाबू साहब!

इधर खेल शुरू हुआ, उधर हम लोगों को गरम-गरम पूरियाँ मिलने लगीं। मैंने बढ़-बढ़कर हाथ मारे। उस समय उन पूरियों का स्वाद ही और था!

पूरियों के बाद मिठाई आई। लड्डू बहुत उम्दा बने थे। जैमलसिंह ने एक लड्डू उठाकर मुझे दिया और कहा—महाशयजी, यह लड्डू खाइए, बहुत मज़ेदार है!

मैंने खाकर देखा, सचमुच: मजेदार था; मगर मेरे कलेजे में जैसे किसी ने मुक्का मार दिया। मैं यहाँ इस तरह मिठाइयाँ खा रहा था, वहाँ घर में मेरी स्त्री भूखी सो रही थी। काश इस समय वह भी यहाँ होती!—मैं सोचने लगा।

[९]

जब मैं रातके तीन बजे घर पहुँचा, तो मेरे पाँव ज़मीन पर न पड़ते थे। श्रीमतीजी ने पूछा—नाटक कैसा था?

मैंने कोट उतारते हुए कहा—अच्छा किया, जो मुझे भेज दिया। खूब पूरियाँ और मिठाइयाँ खाईं।

श्रीमती–अकेले–ही–अकेले खा आए। मेरे लिए क्यों नहीं लाए?

मै–(मुस्कराकर) चुरा लाता! तो लो भई, तुम भी क्या याद करोगी!

यह कहकर मैंने जेब में हाथ डाला और दो लड्डू निकालकर श्रीमतीजी के हाथ में रख दिए।

श्रीमती ने लड्डू मुँह मे डाल लिए और कहा–चोर!

मैंने बिस्तर पर लेटकर जवाब दिया–शुक्र है, मैं चोर हूँ। वरना मै आदमी न होता, शैतान होता!

मेरी स्त्री ने मुस्कराकर मेरी तरफ़ देखा और दूसरा लड्डू भी मुँह में ठूंस लिया।

मैं किसी दूसरी दुनियामें पहुंच गया।

कलयुग नहीं करयुग है यह

[१]

लाला सुरजनमल थके हुए अपने ड्राइंगरूम में आए और सोफ़े पर बैठकर सुस्ताने लगे। हुक्का पीते जाते थे और सामने दीवार के साथ टँगी हुई अपनी बेटी उषा की तसवीर देखते जाते थे। उसे देखकर उनको मन में आनन्द की एक लहरसी उठती हुई मालूम हुई। मगर इसके साथ ही यह भी मालूम हुआ, जैसे उस लहर के ऊपर एक काली-सी घटा भी छा रही है। खुशी यह थी कि बेटी का ब्याह हो रहा है, अपने घर जायगी। उन्होंने अपने कई अमीर मित्रों की पढ़ी-लिखी खूबसूरत लड़कियों का ब्याह साधारण लड़कों के साथ होते देखा था, और अफ़सोस की ठंडी आहें भरी थीं। उनके माता-पिता मानते थे कि वे वर उनकी पुत्रियों के योग्य नहीं, मगर कुछ कर न सकते थे। जवान लड़कियाँ घर में कब तक बिठा रक्खें? मगर लाला सुरजनमल ने गहरा हाथ मारा था। उन्होंने जो लड़का उषादेवी के लिए पसन्द किया था वह लड़का न था, हीरा था। स्वस्थ, सुन्दर, पढ़ालिखा, कुलीन। अभी अभी विलायत से लौटा था, आर आते ही बाप की बदौलत अच्छे पद पर लग गया था। लाला सुरजनमल से और लड़के के बाप से पुरानी दोस्ती थी, वर्ना

ऐसे वर कहाँ मिलते हैं ? जो सुनता था, कहता था, साहब ! आपकी बेटी के सितारे बड़े ज़बर्दस्त हैं, जो ऐसा वर मिल गया। उसमें गुण सभी हैं, ऐब एक भी नहीं। लड़की जीवन भर राज करेगी। लाला सुरजनमल को सन्तोष था कि पढ़ा-लिखाकर लडकी की मिट्टी खराब नही की। मगर दुःख इस बात का था कि जुदाई की बेला आ गई। आज तक अपनी थी, आज पराई हो जाएगी। आज तक घर का सारा स्याह-सफ़ेद उसी के हाथ सौंप रक्खा था। वह जो चाहती थी, करती थी, और जो कहती थी, होता था। किसी को उसके काम में दख़ल देनेकी हिम्मत न थी। एक बार मा ने बेटी की कोई बात टाल दी थी, इस पर उसने रो-रोकर आँखें सुजा ली थीं, और लाला सुरजनमल ने उसे बड़े यत्न से मनाया था। और आज— वह इस घर को सदा के लिए छोड़कर अपना नया घर बसाने जा रही थी। लाला सुरजनमल की आँखों में पिघला हुआ प्यार लहराने लगा। आज उनके घर से बेटी नहीं जा रही, उनके घर की रंगत और रौनक़ जा रही है, उनके आँगन की बहार और बरकत जा रही है, जिसको उन्होंने भगवान् से माँग माँग कर लिया है, जिसको उन्होंने स्नेह से सींचा है, जिस पर उन्होने अपनी जान छिड़की है।

[२]

इतनेमें उनकी स्त्री जमना आकर उनके सामने खडी हो गई और हाँफते हुए बोली— दीनानाथ आपसे मिलने आया है।

सुरजनमल ज़रा न समझे, कौन दीनानाथ। उन्होंने बेपरवाई से हुक्के का धुआँ हवा में छोड़ा और पूछा—कौन दीनानाथ ?

जमना ने पति की तरफ़ अचरज-भरी आँखों से देखा. और जवाब दिया- अब यह भी पूछने की बात है। यह देख लीजिए। यह कहते कहते उसने आनेवाले के नाम का कार्ड पति के हाथ में दे दिया और आप पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई।

सुरजनमल ने कार्ड देखा, तो ज़रा चौंके, और हुक्के की नली परे हटाकर बोले- इसका क्या मतलब? ब्याह से पहले वह मेरे घर में कैसे आ सकता है?

जमना ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा- क्या कहूँ, मुझे तो कुछ और ही शक हो रहा है।

लाला सुरजनमल उठकर खडे हो गए और बाहर जाते जाते बोले- तुम तो ज़रा ज़रा-सी बात मे घबरा जाती हो। इतना भी नहीं समझतीं कि आज-कल के लड़के अपनी रीत-रस्में नहीं जानते। विलायत से आया है। समझता होगा, यहाँ भी वैसी ही आज़ादी है। मिलने के लिए चला आया। उसकी बला जाने कि यहाँ ब्याह से पहले ससुराल में जाना बुरा माना जाता है।

यह कहकर वे लपके हुए बाहर आए। दरवाज़े पर दीनानाथ खडा था। सुरजनमल को देखते ही उसने सिर से अँगरेज़ी टोपी उतारी और हाथ बाँध कर प्रणाम किया।

सुरजनमल ने प्रणाम का जवाब देकर अपना हाथ उसके कन्धे पर रक्खा और धीरे से कहा-- बेटा! क्या करूँ? समाज के नियम मुझे आज्ञा नहीं देते कि तुम्हें ब्याह से पहले घर के अन्दर ले चलूँ, इसलिए मैं भी बाहर चला आया। कहो, कैसे आए। कोई ख़ास बात तो नहीं?

दीनानाथ ने जेब से रेशमी रूमाल निकालकर अपना मुँह पोंछा और जवाब दिया—बात तो ख़ास ही है, वर्ना मैं आपको कष्ट न देता। वैसे बात मामूली है। कम-से-कम मैं उसे मामूली ही समझता हूँ।

सुरजनमल कुछ उदास से हो गये— तो भई! जल्दी कह डालो। मुझे उलझन होती है।

दीनानाथ कुछ देर चुपचाप खड़ा सोचता रहा कि ये तो बिलकुल सड़े हुए ख़याल के आदमी निकले। वर्ना इतना भी क्या था कि मुझे घर के अन्दर ले जाते हुए भी डरते। जैसे इस समय मैं बाघ हूँ, दो घड़ी के बाद आदमी बन जाऊँगा। दुनिया सैकड़ों और हज़ारों कोस आगे निकल गई है, ये महात्मा अभी तक वहीं पड़े कर-वटें बदल रहे हैं। वह समझता था, ससुर बड़ा आदमी है, हज़ार रुपया वेतन पाता है, अँगरेज़ी लिबास पहनता है, साहब लोगों से मिलता-जुलता है, ज़रूर आज़ाद-ख़याल आदमी होगा। मगर यहाँ आया तो एक ही बात ने सारी आशा तह करके रख दी। दीनानाथ जो कहना चाहता था वह गले में अटकता हुआ, ज़बान पर रुकता हुआ, होंठो पर जमता हुआ मालूम हुआ।

सुरजनमल ने फिर कहा—मालूम होता है, कोई ऐसी बात है जिसे कहते हुए भी हिचकिचाते हो। मगर जब यहाँ तक चले आए हो तो अब कह भी डालो। तुम संकोच करते हो, मेरे मन में हौल उठता है।

दीनानाथ ने रुक रुककर जवाब दिया—मैं लड़की देखने आया हूँ।

सुरजनमल के सिर पर किसी ने कुल्हाड़ा मार दिया। दो

मिनट तक तो उनके मुँह से बात ही न निकल सकी। वे दीवार से एक फुट के फ़ासिले पर खडे थे। यह सुनकर दीवार के साथ लग गए, मानो अब उनमें खडे रहने का भी बल न था। मुँह पर हवाइयाँ ऐसे उड़ रहीं थीं, जैसे अभी ज़मीन पर गिर पडेंगे।

दीनानाथ ने घाव पर मरहम लगाते हुए कहा—मैंने लड़की की तारीफ़ सुनी है। मेरी भाभी का कहना है कि ऐसी बहू हमारे कुल में आज तक नहीं आई। बाबूजी उसकी तारीफ़ करते नहीं थकते। मगर फिर भी आप जानते हैं, अपनी अपनी आँख है, अपनी अपनी पसन्द। कल को अगर न बने तो दोनों का जीवन नष्ट हो जाय। ऐसे दृष्टान्त हमारे शहर में सैकड़ो है। इधर लड़के अपनी प्रारब्ध को रो रहे हैं, उधर लड़कियाँ अपने बाप के घर बैठी हैं। इसलिए मेरा तो ख़याल है कि आदमी पहले सोच ले, ताकि पीछे हाथ न मलना पडे। और इसमें कोई हर्ज भी तो नहीं। हर्ज तब था, जब परदे की प्रथा थी। अब परदा कहाँ ?

सुरजनमल ने अपने बिखरते हुए साहसको जमा करके कहा—तुम आज तक कहाँ सोए हुए थे ? अगर पहले कहते तो मुझे ज़रा भी आपत्ति न होती। उसी समय दिखा देता। मगर अब तो मुहूर्त भी तै हो गया, बरात भी आ गई, सारा प्रबन्ध हो गया। इस समय तीन बजे हैं, आठ बजे ब्याह है। अब क्या हो सकता है ? मान लो, मैंने तुम्हें लडकी दिखा दी और तुमने उसे नामंजूर कर दिया तो क्या ब्याह रुक जायगा ? तुम कहोगे, इसमें हर्ज ही क्या है। तुम्हारे लिए न होगा, हमारी तो नाक कट जायगी। इसलिए यह बचपन छोड़ो और चुपचाप जनवासे को लौट जाओ।

मगर दीनानाथ पर इस बात का ज़रा भी प्रभाव न पड़ा, रुखाई से बोला—मेरी राय में तो मामूली बात है।

सुरजनमल—तुम्हारी राय में होगी, मेरी राय मे नहीं है।

दीनानाथ—एक बार फिर सोच लीजिए।

सुरजनमल—बेटा! क्या बावलों की-सी बातें करते हो? ज़रा अपने आपको मेरी जगह रखकर देखो और फिर बताओ। अगर तुम्हारी बहन का ब्याह हो तो तुम क्या करो?

दीनानाथ—मैं तो दिखा दूँ।

सुरजनमल—शायद इसका यह कारण हो कि मैं उस कालेज में नहीं पढ़ा, जहाँ तुम पढ़े हो। मुझे दुनिया का भी मुँह रखना पड़ता है।

दीनानाथ-तब बहुत अच्छा! मैं भी आपको अंधकार में नहीं रखना चाहता। मैंने निश्चय कर लिया है कि चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, मैं लड़की को देखे बिना ब्याह नहीं करूंगा।

सुरजनमल की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। इस अंधेरे से बाहर निकलने का कोई रस्ता न था। सोचते थे, इस छोकरे ने बुरी जगह घेरा है। कोई दूसरा होता तो कान पकड़ कर बाहर निकाल देते, मगर आज—बेटी के कारण वह सुन रहे थे जो आज तक कभी नहीं सुना था। बेटे और बेटी में आज उन्हें पहली बार भेद दिखाई दिया। आज उनके आत्मसम्मान मे अपने पांव पर खड़े होने का बल न था। आज उनके सामने उनका अपमान खड़ा उन्हें ललकार रहा था।

एकाएक उन्हें एक रस्ता सूझ गया। बोले—तो एक काम करो। तुम्हारे पिता जी मध्यस्थ रहें। वे जो कुछ कह देंगे, मुझे मंजूर होगा।

मगर दीनानाथ ने भी विलायत का पानी पिया था, भाँप गया कि बुड्ढे बुड्ढे एक तरफ़ हो जाएंगे, मेरा दाव न चलेगा। उसने अपनी टोपी पर हाथ फेरते हुए कहा—इस मामले में मैं किसी को भी मध्यस्थ नहीं मानता।

अब चारों ओर निराशा थी। डूबते ने तिनके का सहारा लिया था। वह तिनका भी टूट गया। अब क्या करें? इस समय अगर कोई उनका हृदय चीरकर देखता तो वहां उसे एक आवाज़ सुनाई देती—भगवान् किसी को बेटी न दे।

दम के दम में यह ख़बर घर के कोने कोने में फैल गई। ब्याह के दिन थे, दूर नज़दीक के सारे सम्बन्धी आए हुए थे। उनको एक शोशा मिल गया, चारों तरफ़ कानाफूसियां होने लगीं। धनियों के सगे सम्बन्धी उनकी बदनामी से जितना खुश होते हैं, उतना दुश्मन खुश नहीं होते। किसी में मुँह से बोलने का साहस न था, मगर मन में सभी खुश हो रहे थे कि चलो अच्छा हुआ। चार पैसे पाकर इसकी आँखों में चर्बी छा गई थी, अब होश ठिकाने आ जायेंगे।

उधर उषादेवी शर्म से मरी जा रही थी, मगर कुछ कर न सकती थी। हिन्दू घरों में कवारी कन्या के लिए ऐसे मामलों में मुँह खोलना पाप से कम नहीं। देखती थी कि मेरे कारण बाप का सिर नीचे झुका जा रहा है, पर दम न मार सकती थी। दिल ही दिल में कुढ़ती थी और चुपके चुपके रोती थी। इतने में उसकी मा जमना ने आकर भरे हुए स्वर में कहा—तुझे तेरा बाप बुला रहा है।

उषादेवी ने मासे कोई सवाल न किया और आँसू पोंछकर बाप के ड्राइङ्गरूम की तरफ़ चली। ड्राइङ्गरूम के दरवाज़े पर उसके पाँव

ज़रा रुके। मगर दूसरे क्षण में उसने अपना मन दृढ़ कर लिया और अन्दर चली गई। वहां उसके बाप के पास एक और साहब भी बैठे थे। उषादेवी ने उनकी तरफ़ आंख उठाकर भी न देखा और बाप के पास जाकर खडी हो गई।

सुरजनमल ने कहा—बेटी! बैठ जाओ। अपने ही आदमी हैं।

उषादेवी ने सिर न उठाया और एक कुर्सी पर बैठ गई; मगर इस हाल में कि उसे तन-बदन की सुध न थी। दीनानाथ ने देखा कि लड़की शक्ल सूरत की बुरी नहीं है। और बुरी क्या, खूबसूरत है। बल्कि खूबसूरती के बारे मे उसकी जो धारणा थी, उषादेवी उससे भी बढ़-चढकर थी। दीनानाथ कुछ देर उसकी तरफ देखता रहा; ठीक ऐसे ही, जैसे हम किसी चीज़ को खरीदने से पहले देखते हैं। इसके बाद धीरे से बोला—आपने अँगरेज़ी भी पढी है क्या?

उषादेवी मूर्खा न थी, सुनते ही समझ गई कि यही मेरा भावी पति है। मगर वह क्या करे? उसकी बात का क्या जवाब दे? मुँह में जीभ थी, जीभ में बोलने की शक्ति न थी। वह जिस तरह बैठी थी, उसी तरह बैठी रही, बल्कि ज़रा और भी दबक गई।

दीनानाथ ने सुरजनमल की तरफ़ देखा। सुरजनमल बोले–बेटी! तुमसे पूछते हैं। जवाब दो।

उषादेवी ने बड़े संकोच से और सिकुड़कर जवाब दिया–पढ़ी है।

दीनानाथ ने इधर-उधर देखा और लपककर मेज़ से उस तारीख़ का अखबार उठा लिया। इसके बाद उषादेवी के पास जाकर बोला—ज़रा पढ़ो तो। यह कहकर उसने अख़बार उषादेवी के हाथ में दे

दिया, और एक नोट की तरफ़ इशारा करके आप पतलून की जेब में हाथ डालकर कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया।

उषादेवी ने थोड़ी देर के लिए सोचा, और इसके बाद सारा नोट फ़र फ़र पढ़कर सुना दिया।

दीनानाथ की आँखें चमकने लगीं। उसकी अपनी बहन भी अँगरेज़ी पढ़ती थी, मगर उसमें तो यह प्रवाह न था। चार शब्द पढ़ती थी और रुकती थी, फिर ज़ोर लगाती थी और फिर रुक जाती थी, जैसे बैलगाड़ी दलदल से निकलने का यत्न कर रही हो। और फिर उसका उच्चारण कितना भद्दा था! मगर उषा इस पानी की मछली थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे यह उसकी मातृ-भाषा है। दीनानाथ सन्तुष्ट हो गया और सुरजनमल की तरफ देखकर बोला—इनका उच्चारण बड़ा साफ है! किससे पढ़ती रही हैं?

सुरजनमल—एक योरपीय औरत मिल गई थी।

दीनानाथ—बस बस बस!! अगर किसी हिन्दुस्तानी से पढ़तीं तो यह बात कभी न पैदा होती। इनका उच्चारण बिलकुल अँगरेज़ों का-सा है। इन्हें परदे में बिठाकर कहिए, बोलें। बाहर कोई अँगरेज खड़ा हो। साफ़ धोखा खा जायगा। उसे ज़रा सन्देह न होगा कि कोई हिन्दुस्तानी लड़की बोल रही है।

सुरजमनल पर नशा-सा छा गया। समझे, परीक्षा समाप्त हो गई। इतने में दीनानाथ ने दूसरा सवाल कर दिया—इन्होंने कुछ गाना भी सीखा है?

सुरजनमल—जी हाँ।

दीनानाथ—तो कहिए, कुछ सुना दें।

सुरजनमल का खून खौलने लगा, मगर कुछ कर न सकते थे। क्रोध को अन्दर ही अन्दर पी गए और ठंडी आह भरकर बेटी से बोले—कुछ सुना दो।

और दूसरे क्षण में उषा की अँगुलियां बाजा बजा रही थीं, उसकी तानें कमरे में गूँज रही थीं और दीनानाथ आनंद और अचरज से झूम रहा था। मगर सुरजनमल मनकी वेदना से मरे जा रहे थे, बाहर उनकी महमान स्त्रियाँ उनकी निर्लज्जता पर खुश हो होकर अफ़सोस कर रहीं थीं और कलजुग को गालियां दे रही थीं।

संगीत की समाप्ति पर दीनानाथ ने सिगरेट केस से सिगरेट निकाला और उसे सुलगाने के लिए दियासलाई जलाते हुए बोला--वन्डरफुल!

सुरजनमल ने उपेक्षा भाव से कहा--कोई और बात पूछनी हो तो वह भी पूछ लो।

उषादेवी का मुँह लाज से लाल हो गया और कान जलने लगे।

दीनानाथ ने सिगरेट सुलगाकर दियासलाई को हाथ के झटके से बुझाते हुए जवाब दिया--और कोई बात नहीं। मुझे लड़की पसन्द है।

सुरजनमल की जान में जान आई।

[३]

एकाएक उषादेवी अपनी कुर्सी से उठकर खड़ी हो गई और दीनानाथ की तरफ़ देखकर धीरे से मगर निश्चयात्मक रूप में बोली—मगर मुझे तुम पसन्द नहीं हो।

दीनानाथ के लिए एक एक शब्द बन्दूक की एक एक गोली से कम न था। मुँह का सिगरेट मुँह में ही रह गया। मगर पूर्व इसके कि वह कुछ बोले या सुरजनमल कुछ कहें, उषा ने फिर से कहना शुरू कर दिया—

अगर तुम लड़कों को यह अधिकार है कि ब्याह से पहले लड़की को देखो, उसकी परीक्षा करो और इसके बाद अपना फ़ैसला सुनाओ तो हम लड़कियों को भी यह अधिकार होना चाहिए कि तुम्हें देखें, तुम्हें परखें, और इसके बाद तुम्हें अपना फ़ैसला सुनाएं। और मेरा फ़ैसला यह है कि मैं तुम्हारे साथ कभी ब्याह नहीं कर सकती।

सुरजनमल दीनानाथ को नीचा दिखाना चाहते थे, मगर उनमें यह साहस न था। उषादेवी के वीर-भाव को देखकर उनका हृदय-कमल खिल उठा। ब्याह न होगा तो क्या होगा, दुनिया क्या कहेगी और वे उसका क्या जवाब देंगे? इस समय इनमें एक बात भी उनके सामने न थी। उनके सामने केवल एक बात थी। जिसने मेरा अपमान किया है, मेरी बेटी ने उसके मुँह पर तमाचा मार दिया। इसने मेरा बदला ले लिया। यह भी क्या याद करेगा?

दीनानाथ पानी पानी हुआ जा रहा था। मगर चुप रहने से शर्म घटती न थी, बढ़ती थी। वह खिसियाना होकर बोला—आपने तो मुझे परीक्षा के बिना ही फ़ेल कर दिया।

उषादेवी ने और भी ज़ोर से कहा—मुझे तुम्हारी परीक्षा करने की ज़रूरत ही क्या है? मैं इतना समझ गई हूं कि मेरे और तुम्हारे विचार इस दुनिया में कभी न मिलेंगे। मैं सोलहों आने हिन्दुस्तानी हू,

तुम सोलहों आने विदेशी हो। मैं ब्याह को आत्मिक सम्बन्ध मानती हूँ, जो मौत के बाद भी नहीं टूटता। तुम्हारे नज़दीक मेरा सबसे बडा गुण ही यह है कि मेरा रंग साफ है और मेरे गले में लोच है। लेकिन कल को अगर मुझे चेचक निकल आए या किसी दूसरे रोग से मेरा गला ख़राब हो जाय तो तुम्हारी आँखें मुझे देखना भी स्वीकार न करेगी। तुम कहते हो, मैंने तुम्हारी परीक्षा नहीं की, मै कहती हूँ, मैंने तुम्हें दो बातों से तोल लिया है। जिसकी पसन्द ऐसी ओछी और कच्ची बुनियादों पर खड़ी हो उसका क्या विश्वास? तुममें किताबी योग्यता होगी, मगर तुममें मनुष्यत्व नहीं है। मेरे बाबू जी आज से तुम्हारे भी सम्बन्धी थे। तुमने इसकी ज़रा परवा नही की। उनके दिल पर छुरियाँ चल रही थीं और तुम अपनी जीत पर फूले न समाते थे। तुम्हे केवल अपना ख़याल है। दूसरे का अपमान होता है तो हुआ करे। ज़रा सोचो, अगर यही सूलूक मैं तुम्हारे पिता जी के साथ करती तो तुम्हारा क्या हाल होता? आँखों से आग बरसने लगती, लहू खौलने लगता, अजब नहीं मुझे घर से निकालने पर भी उतारू हो जाते। ऐसे स्वार्थी, अन्याय-प्रिय, तंग-दिल पुरुष के साथ जो स्त्री अपना जीवन बाँध ले उससे बड़ी अंधी कौन होगी?

यह कहते कहते उषा बाहर निकल गई।

दीनानाथ का ज़रासा मुँह निकल आया। सोचता था, क्या करूँ, क्या कहूँ। उषादेवी की न्याय-संगत और युक्ति-पूर्ण बातों का उसके पास कोई जवाब न था। चुपचाप अपने पाव की तरफ़ देखता था और अपनी मूर्खता पर पछताता था। मगर अब पछताने से कुछ बनता न था। उधर सुरजनमल की आंखें जीत की रोशनी से जगमगा रही थीं। वे सोचते थे, ऐसे नालायक़ के साथ जितनी भी

हो, कम है। अब बच्चा जी को शिक्षा मिल जाएगी। वे दुनिया और दुनिया की ज़बान से बहुत डरते थे, मगर इस समय उन्हें इसका ज़रा भी डर न था। कुछ देर पहले दीनानाथ का क्रोध उनके लिए दैवी प्रकोप था, इस समय उन्हें उसकी ज़रा भी परवा न थी। आज उनके सामने आत्म-सम्मान और निर्भयता का नया रस्ता खुल गया था, आज उनकी दुनिया बदल गई थी, आज पुराने जुग ने नये जुग में आँखें खोल दी थीं।

सुरजनमल उठ कर धीरे-धीरे दीनानाथ के पास गए और मुँह बनाकर बोले---मुझे बड़ा अफ़सोस है, मगर मैं कुछ कर नहीं सकता। जब लड़की ही न माने तो कोई क्या करे?

दीनानाथ की रही-सही आशा भी जाती रही। समझ गया, जो होना था, हो चुका। थोड़ी देर बाद जब वह बाहर निकला तो ज़मीन-आसमान घूम रहे थे, और दुनिया में कहीं भी प्रकाश न था।

[४]

मगर मां को बेटी की इस बेहयाई पर ज़हर चढ़ गया। रोती हुई उसके कमरे में जाकर बोली—तूने मेरी नाक काट डाली। मैं कहीं मुँह दिखाने लायक़ नहीं रही। लडके ने दो बातें पूछ लीं तो कौन-सा अन्धेर हो गया? जवाब देती और चली आती। अब जब बरात लौट जाएगी और घर-घर में हमारी बातें होने लगेंगी तब हमारे कुल का नाम रोशन हो जाएगा! जिस लडकी की बरात लौट जाए उस लडकी का मर जाना भला।

उषा दीवार के साथ लगी खड़ी थी, मगर कुछ बोलती न थी। चुपचाप माँ की तरफ़ देखती थी और सिर झुकाकर रह जाती थी।

इतने में सुरजनमल ने आकर उषा को गले से लगा लिया और जमना की तरफ़ आगभरी दृष्टि से देखकर बोले—ख़बरदार! अगर मेरी बेटी से किसी ने कुछ कहा तो। इसने वही किया है, जो नए युग की वीर कन्याओं को करना चाहिए, और जो करने की हममें हिम्मत नहीं। अगर हम उसकी प्रशंसा भी न कर सकें तो यह डूब मरने की बात होगी। बाक़ी रह गया सवाल इसके ब्याह का। इसकी मुझे ज़रा भी चिन्ता नहीं। मेरी बेटी के लिए वर बहुत मिल जाएंगे। अच्छे से अच्छा लड़का चुनूँगा।

यह कहते कहते उन्होंनें उषा का माथा चूम लिया।

अरस्तू और ईरानी रमणी

[१]

अढ़ाई हज़ार साल, बल्कि इससे भी अधिक समय गुज़रा, यूनान पर एक ऐसा साहसी और सूरमा सम्राट् राज्य करता था, जिसने यूनान के यश और कीर्ति को दुनिया के कोने कोने में फैला दिया था, और जिसे संसार का इतिहास सदा याद रक्खेगा। सिकन्दर आज़म का नाम यूनान और उसके बाहर बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था, और उसकी बहादुरी और दिलेरी की अमर कथाएँ इतनी आश्चर्य्य-जनक थीं, कि दूसरे राजे अपने-अपने महलों में भी उसके ख्याल से कांप उठते थे और उनकी नींद उचट जाती थी। हर नया सूरज उसकी विजय सूची में नई वृद्धि करता था, हर नई साँझ उसके ऐश्वर्य्य को पहले से विशाल, ऊँचा और भूमि में ज्यादा गहरा गड़ा हुआ पाती थी।

सिकन्दर अपने पूरे यौवन पर था, और मृत्यु का भय उसके विचार-जगत् से कोसों दूर था। उसे अभी यह सोचने का भी अवकाश न था, कि उसके ऐश्वर्य्य के लिए विधाता ने मृत्यु भी उत्पन्न की है, और कभी वह दिन भी आएगा, जब वह उसके जीवन और उत्साह दोनों को पराजय करके उसपर अपना अधिकार जमा लेगी। जब वह अपने बांके घोड़े पर सवार होकर बाहर निकलता था, तो यूनान की सुन्दर कुँवारी लड़कियों में हलचल मच जाती थी। वे उसकी तरफ़ लोभी आँखों से देखती थीं और ठंढी आहें भरती थीं। और उनमें से वे जिनको अपने सौन्दर्य्य और यौवन पर अधिक अभिमान था और जिनको सम्राट् के गौरव का कम भय था, डरते-डरते अपने सजीव और चंचल भावों से भरे हुए हृदयों को हृदयग्राही, सुकोमल, और सुवर्ण फूलों में लपेटती थीं, और सिकन्दर के सामने फेंक देती थीं। मगर सिकन्दर उनकी तरफ़ आँख उठाकर देखता भी न था—वह यश और कीर्ति का प्यासा था, सौंदर्य्य और यौवन का प्यासा न था।

और इसका कारण यह था, कि उसकी शिक्षा उस्ताद अरस्तू की देख-रेख में हुई थी। उस्ताद अरस्तू कोई साधारण आदमी न था, यह वह तत्त्व वेत्ता (हकीम) था, जिसके ज्ञान-ध्यान की अजर और अमर वाणी याद करके यूनान आज भी अभिमान से सिर ऊँचा उठा लेता है। उसने सिकन्दर को बचपन ही से अपने संरक्षण में लिया, और उसे इस ढंग की शिक्षा दी, कि वह बड़ा होकर यूनान के लिए गौरव की वस्तु बने, और दुनिया देख ले, कि जब कोई योग्य उस्ताद अपने शिष्य पर अपने पांडित्य की सम्पूर्ण सामग्री, सम्पूर्ण शक्ति से समाप्त कर देता है, तो शिष्य जवानी में क्या बन जाता है। मगर उस्ताद

अब भी संतुष्ट न था। वह अब भी उसके साथ रहता था। वह अब भी दिन रात उसकी रक्षा करता था। उसे भय था, कि कहीं ऐसा न हो, सौंदर्य्य उसके मन को मोह ले, और उसकी आधी जवानी आधे बुढ़ापे का सारा प्रयत्न और परिश्रम नष्ट हो जाय। सिकन्दर दूसरों के लिए जवान था, बुद्धिमान था, सम्राट था, विश्व-विजयी था; मगर अरस्तू के लिए वह अब भी वही अबोध, पग-पग पर फिसल जानेवाला, बात-बात पर भूल जानेवाला अजान बालक था। यही कारण था, कि बूढ़ा अरस्तू हर समय, और हर जगह नौजवान सिकन्दर के साथ रहता था और हर संकट और हर संहार की, समय पर सूचना देकर उसे सचेत कर देता था।

कभी-कभी जब यौवन की मदमाती सुन्दरियाँ सिकन्दर आज़म के घोड़े पर फूल फेंकती थीं, तो उनमे से बाज़ अरस्तू के घोड़े पर भी गिर पड़ते थे। अरस्तू उनको उठा कर पहले अपने सामने सड़क की धूल पर फेंक देता था और फिर बेपरवाईसे उन्हें घोड़े के पाँव तले कुचल डालता था।

[२]

सिकन्दर अपनी विश्व-विजयी सेना लेकर यूनान से निकला और जो देश सामने आया, उसपर विजय प्राप्त करता गया, जैसे उसके भाग्य में कोई हार न थी, जैसे वह केवल जीतने के लिए पैदा हुआ था। सिपाही विश्राम के लिए तरसते थे; मगर सिकन्दर अभिलाषाओं के आकाश में उड़ा चला जाता था। उसे खाने-पीने की

सुध न थी, न आराम और विश्राम की चाह थी। वह केवल लड़ना और जीतना चाहता था। आख़िर ईरान के एक शहर में वह एक सप्ताह के लिए रुक गया, ताकि उसकी सूरसेना सुस्ता ले और नई लड़ाईयों के लिए जो समाप्त न होनेवाली पर्वत की चोटियों के सामान दूर-दूर तक फैली हुई थीं, अपनी थकी हुई शक्तियों को फिर से इकट्ठा कर ले! मगर एक सप्ताह बीत गया और राजशिविर से कूच की घोषणा न हुई।

सिकन्दर ने घोड़े की पीठ पर से एक ईरानी रमणी को देखा और सुध-बुध खो बैठा। उसने यूनान की स्वर्गभूमि में हज़ारों अप्सराएं देखी थीं; मगर जो अदा ईरान की इस परी में थी, वह इससे पहले कहीं न देखी थी। जो सूरमा कल तक विजय-कीर्त्ति का प्रेमी था, वह आज एक रमणी पर मिटा हुआ था, और उसकी ऊँची कामनायें उसके पाँव में पड़ी तड़पती थीं।

हकीम अरस्तू ने यह देखा और उसे सिकंदर निर्बलता पर दुख हुआ। वह समझता था, कि लोक और परलोक के जो सर्द विचार मैंने इसके दिल में भर दिए हैं, वह सदा जीते रहेंगे और यह स्त्री के जादू से हमेशा बचा रहेगा; मगर उसकी उम्मीदें पूरी न उतरीं और उसने अपने शिष्य को यौवन के सामने असहाय और निर्बल पाया। अरस्तू ने इस सूरत पर शान्ति से विचार किया और एक दिन ऐसे समय जब सिकन्दर अपने सिपाहीयों के बीच बैठा अपनी बहादुरी की प्रशंसा सुन-सुनकर खुश हो रहा था, बूढ़ा और बदसूरत, अरस्तू-कव्वे की लम्बी छाया की तरह, जो मनोहर फूलों पर से गुजर रही हो-इस वीर-सभा में आया और आकर सिकन्दर के सामने खड़ा हो गया। और इस जगह उसने विश्व के सबसे भयंकर रोग, प्रेम पर एक

प्रभाव-शाली वक्तृता की और प्राचीन रोम और यूनान के हकीमों के ग्रन्थों से प्रमाण दे-देकर सिद्ध किया, कि सिपाहीयों के लिए स्त्री उनके वीर-भावों पर पानी फेरने का कारण है। दूसरे लोग इस धोखे में आ जायँ, तो उतनी हानि नहीं, मगर बहादुरों और बादशाहों के लिए स्त्री का सौन्दर्य विष से भी भयंकर है।

बूढ़े अरस्तू ने अपने जीवन-भर की विद्वत्ता और अनुभव की सारी युक्तियां स्त्री के विरोध में समाप्त कर दीं और सिकन्दर सिर झुका कर उसका एक-एक शब्द सुनता रहा; मगर जब अरस्तू चला गया, तो सिकंदर की आंखें अपने सिपाहीयों के सामने न उठती थीं। वह अपने मन में शरमिंदा था; क्योंकि अरस्तूने भरी सभामें उसका अपमान किया था और इस बात की परवाह न की थी, कि अब वह बच्चा नहीं है, यूनान का बादशाह है। दरबारी और सिपाही अभी तक उसके सामने बैठे थे, और उनके दिलों में कई तरह के ख्याल आ रहे थे। कोई अरस्तूके अद्भुत साहस पर उसकी प्रशंसा कर रहा, था कोई उस अदूरदर्शी बूढा समझता था, कोई सिकंदर की अद्वितीय सहन-शीलता पर मुग्ध था, कोई उसे मूर्ख समझता था। और सिकंदर इस समय दुखी था और अपने मनमें झुँझला रहा था। उसने दरबार की बाक़ी कार्य्यवाही जल्दी-जल्दी समाप्त की और अपने ख़ेमे की तरफ चला गया और वहाँ जाकर ईरानी रमणी के सौंदर्य्य को, अपने मन की निर्बलता को, और अरस्तू की ढिठाई को कोसने लगा। और उसने फ़ैसला किया, कि अब उस लड़की का मुँह न देखूँगा; मगर जब दो तीन घंटे गुज़र गए, तो उसके विचारों ने फिर पलटा खाया। अब वह फिर वही प्रेम का बन्दा था, वही उसका बाँका घोड़ा था,

वही पथरीली सड़क थी, वही ईरानकी बेटी की काली आंखों, सफ़ेद दांतों, और लाल गालों की मनको मोह लेने वाली कल्पना थी !

सिकंदर अपनी हृदय-रानी के घर पहुँचा। वह अपने होंटों पर जादू की मुसकान और अपने नेत्रोंमें जादू की ज्योति लेकर उसके सामने आई, तो सिकंदर चौंक पड़ा, और अरस्तू के शब्द उसके और रमणी के बीचमें आकर खड़े हो गए।

सिकंदर के मुंहसे कोई बात न निकली। वह सोचने लगा, मैं क्या कर रहा हूँ। घर से दुनिया जीतने निकला था, यहाँ आकर दिल हार बैठा। संसार क्या कहेगा? अरस्तू क्या कहेगा? यूनान क्या कहेगा? सिकंदर उठकर खड़ा हो गया और बोला—आज मुझे ज़रूरी काम है। कल आऊँगा।

मगर उस घरकी भूमिने उसके पांव पकड़ लिए, और ईरानी रमणी ने मुस्कराकर कहा—मालूम होता है, तुम्हें किसीने यहाँ आनेसे मना किया है। इनकार न करो, तुम्हारा चेहरा तुम्हारी आँखें, तुम्हारी हिचकिचाहट सब इस बात की गवाही दे रही हैं। बताओ? वह कौन है और मैं तुम्हारे शाही दबदबे की सौगन्ध खाकर कहती हूँ, कि उसका ग़रूर मिट्टीमें मिला दूँगी !

सिकंदर के दिल में अपने शिक्षक के लिए श्रद्धा के भाव थे। वह इस पाप-पाताल में उसका नाम लेकर उसका तिरस्कार न करना चाहता था; मगर वह निर्बल था और उसमें सुन्दरता का सामना करने की शक्ति न थी।

उसने सब कुछ कह दिया।

[३]

ईरानी रमणी ने सिकंदर के मुँह से उस्ताद अरस्तू के कड़वे लफ़्ज सुने और तिलमिला कर खड़ी हो गई। सिकंदर ने उसका क्रोध देखा और उस पर जादू-सा हो गया। वह आज-तक न जानता था, कि जब सौन्दर्य्य रुद्र-रूप धारण करता है, तो क्या होता है।

उसने कहा—मेरी जान! मैं तुम्हें चाहता हूँ। तुम मेरे प्रेम के सदके, उस्ताद का अपराध क्षमा कर दो। वह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

ईरानी रमणी ने क्रोध से उत्तर दिया--नहीं, उसने स्त्री के सौन्दर्य का, स्त्री के साहस का और स्त्री की शक्ति का अपमान किया है। उसने स्त्रीके महत्व को गालियाँ दी है। उसने स्त्री को लड़ाई के लिए ललकारा है। और मैं एक कमज़ोर स्त्री, स्त्रियों की दुनिया की तरफ़ से उसका उत्तर दूँगी और उसको बता दूँगी, कि स्त्री के कटाक्ष के सामने उसका, उसके बुढ़ापे का और उसके अनुभव का कोई अस्तित्व नहीं है। वह समझता है, वह तत्त्ववेत्ता है, उसपर किसी का असर न होगा। मगर मैं सिद्ध कर दूँगी, कि जब एक स्त्री आँखों की मुसकान लेकर खड़ी होती है, तो उसके सामने बड़े-बड़े भी नहीं ठहर सकते।

सिकंदर मुस्कराकर बोला—वह ऐसी बातों से बहुत ऊंचा है।

रमणी—मगर वह आदमी है। उसके सीने में दिल है। दिल में भाव हैं।

सिकंदर—शायद उसके सीने में दिल न हो। और अगर हो तो मर चुका हो।

रमणी—मेरी आँखें उसे फिर ज़िन्दा कर देंगी। आपको केवल दो बातें करनी होंगी।

सिकंदर—क्या ?

रमणी—एक तो आप और वह जिस बाग़ में ठहरे है, उसकी चाबी मुझे भिजवा दें। दूसरे मैं चाहती हूँ, आप कल प्रातःकाल अपने कमरे की खिड़की खोलकर बाग़ की तरफ़ देखें। और आप वह देखेंगे, जिसकी आपको कभी आशा न होगी।

सिकंदर—बहुत अच्छा, ऐ ईरान की बेटी! तेरे लिए मैं यह दोनों बातें करूँगा। मगर मुझे विश्वास है, कि इस संग्राम में मेरा गुरु विजयी होगा, और तुझे उसके सामने हार माननी पड़ेगी; मगर ख़ैर! तू अपने तरकश के सारे तीर उस पर समाप्त कर सकती है।

[४]

दूसरे दिन तीन आदमी बहुत सवेरे जागे। एक उस्ताद अरस्तू, दूसरा सिकन्दर, तीसरी ईरानी रमणी।

अरस्तू सोचता था–आदमी कितना मूर्ख है, जो नाश हो जाने-वाली सुन्दरता, पंछी की छाया के समान गुज़र जानेवाली आयु, और वर्षा ऋतु की नदी के समान चढ़कर उतर जाने वाली जवानी के पीछे दौड़ता है, और यह सोचने की परवा नहीं करता, कि इस दुनिया में उसका उद्देश्य क्या है, और उसकी पूर्ति के साधन क्या है ?

सिकन्दर सोचता था–आज एक स्त्री का यौवन एक बूढ़े उस्ताद के ज्ञान-ध्यानपर हमला करने जा रहा है। देखें कौन जीतता है? कौन हारता है?

ईरानी रमणी सोचती थी—बूढ़ा बुद्धिमान है और रात-दिन पठन-पाठन में लगा रहता है, और अपने दिल को मार चुका है। देखें मेरे कटाक्ष उसके मुर्दा दिल में जीवन की अग्नि भड़काते हैं या नहीं।

अरस्तू ने अपनी बत्ती जलाई, कागज़ और क़लम दवात लेकर बैठ गया, और मानव-जीवन के एकमात्र उद्देश्य पर मज़मून लिखने लगा। उस समय बाहर बाग़ में अभी अन्धेरा था और गुलाब के फूल का रंग काला दिखाई देता था।

अरस्तू ने बाहर झाँक कर इस अन्धकार की तरफ़ देखा, और फिर अपने प्रकाश पूर्ण विचारों में लीन हो गया। वह भूली-भटकी आत्माओं को सत्यमार्ग पर लाने की बातें सोचता था, और उन्हें लिखता जाता था।

इधर बाहर सूरज की किरणें बाग़ के फूल और पत्तों और वृक्षों के साथ खेलती थीं। और एक लावण्यवती सुन्दरी अपने कबूतरों के समान सफ़ेद पाँव सब्ज़ घास पर रखती हुई टहल रही थी और काव्य और कल्पना के रंगीन गीत गा रही थी।

रमणी गाती थी, सूरज की किरणें नाचती थीं, और सिकन्दर दूर फ़ासले पर खड़ा यह सब कुछ देखता था।

अरस्तू लिखते लिखते रुक गया और सुनने लगा। बाहर बाग में कोई गा रहा था। मगर उसने इस गीत की तरफ़ से अपने कान बन्द कर लिए, और अपने सामने फैले हुए काग़ज़ पर अपना लेख लिखने में लीन हो गया। थोड़ी देर बाद अरस्तू के कानों ने फिर वही आवाज़ सुनी। अब इसमें मिठास भी थी, मोहनी भी थी। अरस्तू को ऐसा लगा जैसे वह थक गया है, और उसके अंग शिथिल हो गए हैं। उसने कुछ देर आराम किया, और फिर लिखने को लेखनी उठाई; मगर बाहर से फिर सुरीला स्वर सुनाई दिया और उसकी अँगुलियों से लेखनी खिसक गई।

वह अपनी लिखने की चौकी से उठा, और खिड़की में खड़ा होकर नीचे देखने लगा। वहाँ वृक्ष थे, घास थी, फूल थे, फूलों पर पड़ी हुई ओस की बूँदे थीं। मगर वहाँ कुछ और भी था और वह एक सुन्दरी बाला थी। वह हंसनी की तरह टहलती थी, कोयल की तरह गाती थी, और उसका टहलना किसी नर्तकी के नाच से कम मनोहर न था।

अरस्तू उसकी तरफ़ अपनी बूढ़ी आँखों से देख रहा था, और उसे दिशा और काल की सुध न थी। रमणी के सिर से कपड़ा खिसक गया था, और उसके लम्बे-लम्बे काले बाल उसके कंधों से बिखरकर कमर तक लटक आए थे। वायु के झकोरे उन्हें छूते थे, और उन्हें छेड़ते थे, और उन्हें और भी खूबसूरत बनाते थे। और उसका गीत इतना सुरीला, इतना रसीला, ऐसा स्वप्नमय था कि फूल, पत्ते, घास सब तन्मय होकर सुनते प्रतीत होते थे। बूढा और बुद्धि-

मान अरस्तू खिड़की में और भी झुक गया, और जवानी के इस जादू को बड़े ध्यान से सुनने लगा।

सिकन्दर ने अपनी खिड़की से अपने गुरु को रमणी की तरफ़ ताकते देखा, और उसे आश्चर्य हुआ; मगर गुरु की आँखें इस तरफ़ से बिलकुल बन्द थीं।

अरस्तू हकीम और लेखक था, और उसे सुन्दर शब्दों पर, ऊँचे विचारों पर, और उन्हें प्रकट करने पर पूरा-पूरा काबू था। मगर जो उग्रभाव इस समय उसके हृदय में थे, अगर वह उन्हें लिखना चाहता, तो कभी न लिख सकता। इस समय उसके सामने ईरानी रमणी खड़ी थी; परन्तु इस समय उसके सामने एक और रमणी भी खड़ी थी, जो कभी यूनान में रहती थी, और उससे प्रेम करती थी। उसे ऐसा ख्याल आया कि वह सुन्दरी, जिसे मरे हुए कई वर्ष बीत चुके थे, ईरान की इस सुन्दरी में ज़िन्दा हो गई है। फिर उसे ऐसा ख्याल आया, कि समय की सूइयाँ पीछे मुड़ गई हैं, और उसका बूढ़ा दिल एक बार फिर जवान हो गया है; मगर वह स्वय बूढ़ा है, उसका यौवन—वसन्त समाप्त हो चुका है, और उसके शरीर को मौत का कीड़ा लग चुका है। वह कुछ देर तक इन्हीं विचारों में डूबा रहा, इसके बाद ऐसी बेपरवाई से पीछे की तरफ़ मुड़ा कि उसकी दवात लिखे हुए काग़ज़ों पर उलट गई, और स्याही सारे लेख पर फैल गई। मगर अरस्तू ने न इधर देखा, न देखने की ज़रूरत समझी, और नीचे उतर कर बाग़ में चला गया, और उस रमणी के पीछे खड़ा होकर उसकी तरफ़ प्यासी आँखों से देखने लगा।

ईरानी रमणी एक फूल के पास खड़ी उसके रंग और रूप की बहार देख रही थी। सहसा अरस्तू ने अपना कांपता हुआ हाथ उसके कंधे पर रख दिया, और कहा—हैरानी है, फूल भी फूल को लोभ की आंख से देख रहा है।

रमणी ने चौंक कर बूढ़े की तरफ़ देखा, और तब मुस्कराकर सिर झुका लिया।

अरस्तू का उत्साह बढ़ गया। थोड़ी देर बाद उसने अपनी लकड़ी के समान सूखी हुई भुजाएँ लड़की के गले में डाल दीं। उसे वह दिन याद आ गए, जब वह जवान था, और अपने सिर पर सुन्दर रंग के फूलों की माला बाँधकर अपनी प्रेयसी के साथ प्यार मुहब्बत की बाज़ियां खेला करता था। यह लड़की वह न थी; पर वैसी ही थी। वैसी ही चंचल, वैसी ही मन को मोहनेवाली, वैसी ही जवान। अरस्तू ने उसका मुँह अपने दोनों हाथों से दबाकर अपनी आँखें उसकी आँखों में डाल दीं. और धीरे से कहा—मुझे तुझसे प्यार हो गया है, क्या तू भी मुझसे प्यार कर सकती है?

रमणी ने अरस्तू की तरफ़ प्रेम-पूर्ण ? दृष्टि से देखा और बिना कुछ कहे सिर झुका लिया।

क्या तू भी मुझसे प्यार कर सकती है?—अरस्तू ने दूसरी बार पूछा।

रमणी ने इस बार भी उत्तर न दिया।

अरस्तू ने अपनी अँगुली लडकी की ठुड्डी के नीचे रखकर उसका मुँह ऊपर उठाया, और तीसरी बार पूछा—क्या तू भी मुझसे प्यार कर सकती है?

रमणी का मुँह लज्जा से लाल हो गया। उसने धीरे से कहा—कर सकती हूँ; मगर एक शर्त है, अगर उसे पूरा कर सको तो मेरा हृदय और उसका प्यार तुम्हारे अर्पण होगा।

अरस्तू की आँखें चमकने लगीं, बोला—क्या?

रमणी ने अपना मुँह यूनान के सबसे बड़े तत्ववेत्ता के कान के पास ले जाकर कुछ कहा और फिर बालकों की चपलता से खिलखिला कर हँस पड़ी।

मगर अरस्तू का मुंह गम्भीर था। उसने रमणी की तरफ़ बड़े ध्यान से देखा। मानों देखना चाहा, कि जो कुछ लड़की ने कहा है, सचमुच कहा है, या यह उसकी दिल्लगी है। और जब उसको विश्वास हो गया, कि उसका वही मतलब है, जो उसने कहा है, तो उसका मुह मैला हो गया, और जो ज्योति उसकी उदासी आँखों में पैदा हुई थी, वह फिर बुढ़ापे की शून्यता में मर गई। उसने निराशा का एक ठंडा साँस लिया और अपने कमरे की तरफ़ जाने को मुड़ा।

लड़की ने बूढ़े को आँखों का बान मारकर कहा—बस!

अरस्तू रुक गया। कुछ देर सोचता रहा, इसके बाद उसने बनावटी हँसी हँसकर जवाब दिया—यह तेरी मूर्खता है; मगर तेरे लिए मुझे आत्मा का यह पतन भी स्वीकार है।

यह कह कर वह प्रातःकाल की ठण्डी दूब पर घुटनों के बल बैठ गया। लडकी ने एक रस्सा उसके मुँह में दे दिया, और कूदकर उसकी पीठ पर चढ़ बैठी—मेरा प्यारा घोड़ा कितना तेज़ चलता है!

[४]

और यह उस अरस्तू का हाल था, जो सिकंदर का गुरु था, जो यूनान के बुद्धिमानों की महासभा में आत्मा और परमात्मा के विषय में व्याख्यान दिया करता था, जिसने दुनिया का बहुत कुछ देखा था, जिसने दुनिया का बहुत कुछ सुना था, जो दुनिया को उसके असली रूप में देखने की शक्ति रखता था। यह उस आदमी की दुर्दशा थी, जो प्रेम को संसार की सबसे भयानक बीमारी कहा करता था। आज प्रारब्ध उसकी हंसी उड़ा रहा था।

एकाएक किसी के पाँव की चाप सुनाई दी। सम्राट सिकंदर उनके सामने आकर खड़ा हो गया, और बोला—सिपाहिओं के लिए स्त्री उनके वीर-भावो पर पानी फेर देने का कारण है। दूसरे लोग इस धोखे में आ जायँ, तो उतनी हानि नहीं; मगर बहादुरों और बादशाहों के लिए स्त्री का सौन्दर्य विष से भी भयंकर है।

अरस्तू ने अपना सुन्दर भार पीठ से उतार दिया, और मुँह से लगाम निकालकर उठ खड़ा हुआ। उसने लड़की की तरफ़ देखा, वह सम्राट की तरफ़ देख रही थी। उ ने सम्राट की तरफ़ आँख उठाई, वह अपनी हँसी को खाँसी के परदे में छिपाने का यत्न कर रहा था।

अरस्तू ने दोनों की तरफ़ पीठ कर ली, और चुप-चाप ऊपर को देखने लगा। इस समय उसे ख्याल आया, कि यूनान के उन दिनों में, और ईरान के इन दिनों में कितना फ़र्क है। उस समय प्रेम उसके पांव-तले अपना आपा बिछाता, था। इस समय प्यार ने उसकी परवा न की थी।

आखिर उसने सम्राट को सम्बोधन करके कहा—ऐ मेरे बच्चे! तू मेरे आत्म-पतन पर हँस रहा है; अगर तू बुद्धिमान होता, तो

यह रोमांचकारी दृश्य देखकर तेरा लहू सर्द हो जाता, और तेरी जीभ में बोलने की शक्ति न रहती। ज़रा सोच, अगर स्त्री मुझ जैसे बुड्ढे, ठण्डे, दाना, हकीम की यह दुर्गति कर सकती है, तो वह तेरे साथ क्या न करेगी। वह हमें दुःख देती है, हमारा उपहास करती है, हमें हमारी अपनी दृष्टि में शर्मिंदा करती है, और हम ऐसे मूर्ख, इतने मतिमूढ हैं, कि जब वह आती है, तो उसका स्वागत करने को घर से बाहर निकलकर द्वार पर खड़े हो जाते हैं।

यह कहते-कहते बूढ़े अरस्तू ने अपना सिर उठाया, और फूलों की क्यारियों के बीच में से गुज़रता हुआ अपने पठन-पाठन के कमरे को चला गया। सिकंदर और वह लडकी दोनों चुप-चाप खड़े थे, और सोचते थे—यह आदमी कितना ऊँचा, कितना धीरात्मा, कितना समझदार है, और हम इसके सामने कितने छोटे और अजान हैं !

एक ग्वाले का जीवन-चरित्र

[१]

पाँच हज़ार साल गुजरे, गोपाल अपनी ग्वालिन मां की कुटिया के द्वार पर आया, और माखन के से मुलायम और मिसरी के से मीठे स्वर में बोला—मा, मुझे दूध दे।

यशोदा, उसकी मां कहीं बाहर गई थी। गोपाल की आवाज़ दूसरी ग्वालिनों ने अपनी-अपनी पर्ण कुटिया में सुनी, और उनमें से हर एक दूध का एक एक मटका लेकर बाहर निकल आई।

गोपाल ने एक ग्वालिन से, जो उसके बहुत पास पहुँच चुकी थी, दूध ले लिया और उसे बालकों की चञ्चलता और अधीरता से पीने लगा।

इसके बाद वह जङ्गल के आज़ाद पञ्छी के समान बंसी बजाता हुआ अपने ग्वाले मित्रों की तरफ़ चला गया।

दूसरी ग्वालिनों की आंखों में आँसू आ गए।

[२]

पाँच साल गुजरे, गोपाल अपनी माँ के महल के द्वार पर आया और चीख़ कर बोला— माँ मुझे बहुत भूख लगी है, थोड़ा दूध दे।

यशोदा अपनी ग्वालिन सहेली के मकान में थी। उसने अपने पुत्र को वहीं बुला लिया, और सहेली से कहा— बहन! तेरे यहाँ दूध होगा। एक कटोरा गोपाल को दे।

मगर यशोदा की ग्वालिन सहेली ने दूध न दिया। गोपाल ने यह कुरीति देखी, और अपनी मद-भरी वंसी बग़ल में दबा कर बाहर चला गया।

यशोदा की आँखें सजल हो गईं।

[३]

कुछ और समय बीत गया। अब वही फूल-सा सुन्दर बालक अपनी उसी स्नेहमयी, प्रेम-प्रतिमा माता के सामने रोग-शैया पर बीमार पड़ा था, और दूध के एक घूँट के लिए रो-रो कर प्रार्थनाएँ करता था।

यशोदा के पास दूध था, मगर गोरे डॉक्टर की दवा ख़रीदने के लिए पैसे न थे। उसने हृदय-दाह के कारण ठण्डी साँस भरी, और कहा—गोपाल! हठ न कर। दूध नहीं है।

मगर गोपाल को इस पर विश्वास न हुआ। वह धीरे-धीरे माँ की आँख बचा कर उठा; और दूध के पास जा पहुँचा।

मगर अभी दूध का बिल्लौरी गिलास उसके निर्बल होंटों को न छूने पाया था कि यशोदा के दयावान हाथों ने वह गिलास छीन लिया, और उसे बेचने के लिए बाज़ार ले गई।

रात को जब यशोदा वापस आई, उस समय चारा तरफ़ अन्धेरा हो चुका था। उसने बिजली का बटन दबा कर रोशनी की और गोपाल की तेजहीन आँखों ने उसके हाथ मे दवा की शीशी देखी।

यह हृदय-बेधक दृश्य देखकर गोपाल ने अपनी मनोहर मुरली खिड़की की राह से बाहर फेंक दी, और सङ्गमरमर के फ़र्श पर गिर कर रोने लगा।

केरेस्कानिया

[१]

रापसन कालेजके इङ्गलिश प्रोफ़ेसर चटर्जीको अप्रसिद्ध और मोटे मोटे शब्दोंके प्रयोग करनेका शौक था। शायद उनका विचार था कि योग्यता प्रकट करनेका इससे अच्छा और कोई उपाय ही नहीं है। सरल शब्दोंको हर कोई जानता है। यह भी कोई बहादुरी है कि मिडिल स्कूलकी रीडरोंके शब्दोंमें विचार प्रकट किए जाय। मज़ा जब है कि हम बोलें और लोग मुँह देखते रह जायँ। उन्हें भी मालूम हो कि किसीसे बातचीत की थी। 'सरल भाषा योग्यताकी कसौटी है,' यह बात उनके लिए हास्यास्पद थी। घर जाकर शब्द-कोषोंकी छानबीन करते, और जो भी कठिन शब्द मिलता, पाकेट-बुकपर 'चढ़ा' लेते, और फिर जब तक वह ऐसे शब्दोंको उपयोगमें न ले आते, तब तक आपको चैन न आता था। उनका कोई लेक्चर ऐसा न होता था, जिसमें दो तीन बिलकुल नये शब्द न हों। और नये भी ऐसे, जिन्हें किसीने भी न सुना हो। सारी जमात मुँह ताकती थी और चटर्जी मुस्कराते थे; जैसे वह कह रहे हों कि और भी कई शब्द हैं। तुम हमे ऐसा-वैसा समझते

हो ? उन्होंने एक बार गर्वसे कहा भी था कि कालेजमें जितना शब्द-कोष उनका है, उतना और किसीका नहीं। कालेजके दूसरे प्रोफ़ेसर उनकी इस बेहूदगीपर हँसते थे; पर उन्हें इसकी पर्वाह न थी। वह समझते थे, यह सब मूर्ख और नालायक़ हैं। उनके पास शब्दोंकी कमी है; थोड़ेसे शब्द हैं, उन्हींके हेर-फेरसे काम चला लेते हैं। मैं हर समय नये और बड़े शब्द व्यवहार करता हूँ। वह जलते हैं और विद्यार्थियोंको धोखा देते हैं कि सरल शब्दोंका प्रयोग करो; योग्यताका यही आधार है। यह न कहें, तो लड़कोंकी दृष्टिमें गिर जायँ, कोई उनकी बात ही न पूछे।

[२]

आखिर एक दिन गंडासिंह, सुन्दरलाल और महमूदने मिलकर फ़ैसला किया कि प्रोफ़ेसरको शिक्षा दी जाय। फ़ोर्थ ईयरमें पढ़ते हैं, यह साल भी बीत गया, तो दिलमें अरमान रह जायगा।

महमूदने कहा—सबक़ तो मैं ऐसा दूँगा कि जनाब सारी उमर न भूलें। मगर तुम्हें मेरा साथ देना होगा, यह सोच लो। कहीं ऐसा न हो, मामला प्रिन्सिपल तक पहुँच जाय और यार लोग कालेजसे निकाल दिये जायँ।

गन्डासिंह—मगर प्रिन्सिपल साहब तक मामला पहुँचे ही क्यों ?

महमूदने सिगरेट सुलगाकर कश लगाया और कहा—सुनो भाई, अगर तुम साथ रहोगे तो न पहुँचेगा। अगर साथ छोड़ दोगे, तो पहुँच जायगा।

सुन्दरलालने अपनी नेकटाईकी गिरहको कसते हुए गन्डासिंहकी तरफ़ देखा, और बोला—क्यों खालसाजी ! बेवफाई तो न करोगे ? मुझपर तो सन्देह ही नहीं हो सकता, तुम पर हागा—बको ।

गन्डासिंह—(अपनी पगड़ीपर हाथ फेरकर) हम ख़ालसे हैं। खालसा लोग बेवफ़ाई नहीं कर सकते ।

महमूद—तो फिर शुरू हो जाय यह काम आज ही से ?

गन्डासिंह—कुछ ख़र्च तो न होगा ?

सुन्दर—यह भी तै कर लो । बादमें कहोगे कि तुम पीछे क़दम हटा रहे हो । एक-एक रुपयेमें काम बन जाएगा ?

महमूद—एक-एक रुपयेमें तो जनाब किसी चपरासीका भी मजाक नहीं उड़ाया जा सकता । यह तो प्रोफ़ेसर चटर्जी ठहरे—सबसे लायक़ प्रोफ़ेसर, जिनके मुकाबलेमें दूसरे सारे प्रोफ़ेसर हेच हैं ।

गन्डासिंह—(मुस्कराकर) दो दो सही । अब तो ठीक है ना ? बस, बस, अब न बोलना । इससे ज्यादा बजटमें गुञ्जायश नहीं है।

महमूद—ख़ैर, यह बादमें देखा जायगा । जो ख़र्चा होगा, अपने-अपने हिस्सेका दे देना । मैं अपनी मेहनतका एक पैसा भी लूँ तो कान पकड़ लेना ।

सुन्द०—मगर यार मज़ा आ जाय । यह भी क्या याद करेगा !

मह०—ज़रा मौक़ा हाथ आने दो, तोबा न करे, तो महमूद नाम नहीं । सारी उम्र मुश्किल लफ्ज़ इस्तेमाल करनेका नाम न लेगा ।

[३]

और यह मौक़ा दूसरे ही दिन हाथ आ गया। प्रो० चटर्जीका घण्टा था। वह लेक्चर दे रहे थे, और महमूद छतकी तरफ़ देख रहा था, जैसे उसे इससे कोई वास्ता ही नहीं। प्रोफ़ेसर चटर्जीने ललकार कर कहा—महमूद !

सब लड़के चौकन्ने हो गये। महमूदने छतपर से नज़र हटाई और बैठे-बैठे प्रोफ़ेसर साहबकी तरफ़ देखकर जवाब दिया—जी !

चटर्जी—तुम छतकी तरफ़ क्या देख रहे थे ?

मह०—मैं लेक्चर सुन रहा था।

च०—मेरा ख्याल है, तुम झूठ बोल रहे हो।

मह०—(बैठे-बैठे) और मेरा ख्याल है, मैं सच कह रहा हूँ।

च०— अच्छा तो बताओ, मैं क्या कह रहा था इस वक्त ?

मह०—आप कह रहे थे कि जब शाहज़ादा डेनमार्कने अपने बापकी रूहको देखा तो—

च०—तो क्या ?

मह०—मेरा ख्याल ज़रा बाहर चला गया था।

च०—(व्यंग-भरे अंदाज़से) ठीक !

मह०— मैं माफ़ी चाहता हूँ।

च०—तुम पूरे 'केअरलेस' (Careless) हो। देख लेना अबकी बार तुम कभी पास न होगे। ईश्वर जाने तुम्हारा ध्यान कहाँ रहता है ?

मह०—साहब ! यह तो आपकी ज्यादती है। आप मुझे

'केअरलेस' कहते हैं। मैं समझता हूँ, मैं 'केरेस्कानिया' (Careskania) हूँ।

प्रो० चटर्जी यह नया शब्द सुनकर चौंक पड़े। बोले— तुम क्या हो? यह शब्द क्या कहा तुमने?

मह०—मैंने कहा है, मैं Careskania हूँ।

च०—इस शब्दके क्या अर्थ हैं?

मह०—वह आदमी, जो ज़रूरतसे ज्यादा सावधान हो।

लड़के अपने-अपने मुँहके सामनें किताब रखकर मुस्कराने लगे। प्रो० चटर्जीने अपनी किताब मेज़पर रख दी, और बोले— Careskania कोई शब्द नहीं है।

मह०—आपको मालूम न हो, तो कोई क्या करे। मैंने डिक्शनरीमें देखा है।

प्रो० चटर्जी कुछ देर तक सोचते रहे। फिर बोले—मैंने यह शब्द आज तक नहीं सुना!

महमूदको कुछ साहस हुआ। उसने कहा—मैं कल Daily Herald का पर्चा देख रहा था। उसमें यह लफ्ज़ आया। डिक्शनरी देखी, तो यह अर्थ मालूम हुआ। वरना यह लफ्ज़ कल तक मुझे भी मालूम न था।

प्रो० साहबने यह शब्द नोटबुकमें लिख लिया और फिर पूछा—कौन-सी डिक्शनरीमें देखा?

महमूद—(हिचकिचाते हुए) फ़ालन साहबकी डिक्शनरीमें। ३-४ रुपये उसकी क़ीमत है।

थोड़ी देर बाद छुट्टीका घण्टा आया, तो तीनों दोस्त इकट्ठे हुए और बातें करने लगे।

गन्डासिंह–यह तुमने Careskania खूब नया शब्द बताया।

महमूदने उँगलीसे सिगरेटकी राख गिराकर कहा–और क्या ! यह समझे था कि नए लफ्ज़ मैं ही जानता हूँ, मुंह तोड़ दिया।

सुन्दरलाल—लिखकर ले गया है। आज जाकर डिक्शनरीमें देखेगा, कल आकर इस्तेमाल करेगा।

मह०—चलो, हम भी कह सकेंगे कि हमने एक नया लफ्ज प्रो० साहबको सिखा दिया। सारी उम्र टक्करें मारता फिरता, पर यह शब्द कहीं न मिलता।

सुन्दर—अरे, तो क्या तुमने ऐसा शब्द बता दिया, जो है ही नहीं। कल ही आकर तुम्हें पकड़ लेगा। क्या जवाब दोगे ?

मह०—तुम्हें क्या फ़िकर है। मुझ से पूछेगा मै जवाब दे दूँगा। तुम चुप चाप तमाशा देखते जाना।

गन्डा०—कहीं फँस न जाना यार मेरे।

मह०—फँसने वाले दिन तुम्हारा यार पैदा ही नहीं हुआ। इस तरह निकले जाऊँगा, जैसे मक्खनसे बाल। मगर जमातके लड़के हमारे साथ हैं न ? वह बरख़िलाफ़ हो गए, तो सब गुड़ गोबर हो जायगा। क्यो ख़ालसाजी ?

गन्डा०—यह मुझपर छोड़ दो, मैं सब इन्तज़ाम कर लूगा।

दूसरे दिन प्रो० चटर्जीने जमातमें आते ही कहा—महमूद ! वह फ़ालन डिक्शनरी कहाँ है ? ज़रा मुझे भी दिखा दो। मेरे पास जो डिक्शनरी है, उसमें यह शब्द नहीं है।

मह०—मगर जनाब! डिक्शनरी तो मेरा भाञ्जा गुजरात ले गया। मुझे मालूम होता, आपको ज़रूरत पड़ेगी, तो न देता!

च०—किसी औरके पास वह डिक्शनरी है?

मगर वह डिक्शनरी किसीके पास भी न थी।

प्रो० चटर्जीने कहा—तुम्हारा भाञ्जा कब तक लौट आएगा गुजरातसे?

मह०—अब साहब क्या बताऊँ! एक हफ्तेसे पहले क्या लौटेगा? मुमकिन है, दो-चार दिन और लग जाएं। बहरहाल १५ दिनके अन्दर-अन्दर ज़रूर आ जायगा।

च०—मैं तुम्हारी यह बातें खूब समझता हूं। Careskania कोई शब्द नहीं है। एक झूठ बोल चुके हो, अब उसे छिपानेके लिए और झूठ बोल रहे हो! साफ़ क्यों नहीं कहते कि यह शब्द तुम्हारा अपना बनाया हुआ है।

मह०—यह तो उसी वक्त मालूम हो, जब वह लौटकर आ जाए। इससे पहले आपको यक़ीन नहीं आ सकता।

१५ दिन बाद प्रो० चटर्जीने पूछा—क्यों भाई। वह तुम्हारा भाञ्जा गुजरातसे अभी आया या नहीं?

महमूदने फ़ौरन जवाब दिया—आ गया जनाब!

च०—तो तुम वह डिक्शनरी ज़रूर ले आए होगे। दिखाओ!

मह०—जी! लाया तो था, मगर अब देखता हूँ, तो वह किताबोंमें नहीं। खुदा जाने, कहाँ गिर गई। (थोड़ी देर ठहरकर) मुमकिन है, अस्लमके कमरेमें रह गई हो।

च०—अस्लम बोर्डिङ्गमें रहता है। जाकर ले आओ। कौन मीलोंका फ़ासला है! भागकर जाओ

महमूद गया और थोड़ी देर बाद ख़ाली हाथ लौट आया।

प्रो० चटर्जी ब्लैकबोर्डपर कुछ लिख रहे थे। उन्होंने मुड़कर उसकी तरफ़ देखा और मुस्कराकर पूछा—क्यों, मिली?

मह०—कमरा बन्द है।

सब लड़के हँसने लगे।

प्रोफेसर साहबको क्रोध आ गया—यह कलका लडका मुझे बना रहा है। झुँझलाकर बोले—ताला तोड़ दो।

महमूद भी तैयार था। उसने तड़ाकसे जवाब दिया—तालेके पैसे कौन देगा? आप?

प्रो० च०—(पतलूनकी जेबमें हाथ डालकर) हाँ! हम देंगे। मगर डिक्शनरी वहाँ भी नहीं मिलेगी।

मह०—मिलेगी क्यों नहीं? उसीकी मेज़पर रह गई है। तो जाऊँ, जाकर ताला तोड़ दूँ?

च०—हाँ, तालेकी क़ीमत मैं दूँगा।

महमूद लपककर बाहर निकल गया। प्रो० साहबने विद्यार्थियोंको सम्बोधन करके कहा—साफ़ झूट बोल रहा है। मुझे विश्वास है, कि careskania कोई शब्द नहीं है।

एक छात्रने कहा—प्रोफ़ेसर साहब! शायद हो! आपने डिक्शनरी देखी?

च०—मेरे पास बड़ी डिक्शनरी है; उसमें यह शब्द नहीं है।

उसके सामने फ़ालन बहुत छोटी डिक्शनरी है; उसमें कैसे हो सकता है ? बिलकुल झूठ बोलता है।

एक और विद्यार्थी–ताला भी तोड़ना पड़ा।

तीसरा—मज़ाक करता होगा।

गंडासिंह—यह नामुमकिन है। वह हमसे मज़ाक कर सकता है, मगर आपसे नहीं कर सकता। क्या इतना भी नहीं जानता, कि यह मज़ाक़ उसे महँगा पड़ेगा। शरारती है मगर मूर्ख नहीं है।

सुन्दरलाल—मुझसे भी कहता था, यह शब्द मैंने देखा है। अगर शरारत होती, तो मुझसे कभी नहीं छिपाता।

च०—(गम्भीरतासे) अभी मालूम हो जाता है। (थोड़ी देर बाद) देख लेना, ख़ाली हाथ लौटेगा; Careskania कोई शब्द नहीं है।

छात्र मुस्करा रहे थे। प्रो० चटर्जी व्याकुलतासे इधर-उधर टहलते थे और बार-बार दरवाज़ेकी तरफ़ देखते थे।

इतनमें महमूद एक हाथमें डिक्शनरी और दूसरे हाथमें टूटा ताला लिए कमरेमें दाखिल हुआ। बोला—लीजिए, मिल गई। वहीं थी।

यह कहकर उसने डिक्शनरी प्रोफेसर साहबके हाथमें दे दी, ताला मेज़पर रख दिया, और खुद विद्यार्थियोंकी तरफ़ मुँह करके खड़ा हो गया, जैसे मौन भाषामे कह रहा हो—क्यों ? ले आया या नहीं ? तुम अब तक समझे थे, यह झूठ बोल रहा है।

प्रो० चटर्जी डिक्शनरीके पन्ने उलट रहे थे, लड़के टकटकी लगाकर उनकी तरफ देख रहे थे, और महमूद बेपरवाहीसे छतकी कड़ियाँ गिन रहा था।

थोड़ी देर बाद बोला---कहिये जनाब ! मिला ? या मैं ढूँढ़ दूँ ?

प्रो० च०---(पुस्तकपर दृष्टि गड़ाये हुए) भई ! मिल तो गया। माने भी वही हैं।

महमूद---आप कहते थे, झूठ बोलता हूँ।

च०---(ज़रा झेंपकर) हैरानी है ! मेरी डिक्शनरीमें क्यों नहीं ?

मह०---कोई पुराना एडीशन होगा।

च०---हा यही कारण होगा।

यह कहकर उन्होंने डिक्शनरी महमूदको लौटा दी, और टूटे हुए तालेकी तरफ़ देखकर बोले--इसका मोल क्या होगा ?

महमूदने ताला उठा लिया और बोला---१।। रुपया। जिस दिन अस्लमने इसे ख़रीदा, मै भी उसके साथ था। बड़ा मज़बूत लोहा है। टूटता ही न था।

प्रोफ़ेसर साहबने डेढ़ रुपया दे दिया।

महमूद बोला---यह आपको फ़िज़ूलका जुर्माना हुआ ! अगर आप जल्दी न करते, तो अस्लम १०-१५ मिनटमें ज़रूर आ जाता। साइकिलपर गया था।

च०---तुम्हारा यह विचार ग़लत है। मैं एक नए शब्दकी कीमत इससे भी अधिक समझता हूँ।

इतनेमें घण्टा बजा। सब छात्र बाहर निकल आए। अब हर एक विद्यार्थी महमूदपर गिरा पड़ता था। सब यही कहते थे---तुमने कमाल कर दिया। हम समझते थे, यह भी तुम्हारी शरारत होगी।

महमूद कुछ देर तक चुपचाप अपने सहपाठियोंकी बातें सुनता

रहा। इसके बाद चारों तरफ़ देखकर बोला—अगर तुमने हमें सचमुच शरीफ़ आदमी समझ लिया है, तो यह तुम्हारी अव्वल दर्जेकी हिमाक़त है। हम इस वक्त होश-हवासमें सबके सामने एलान करते हैं कि आज-का वाक़या भी हमारी एक शरारत है; लेकिन यह शरारत तुम्हारी मदद-दके बिना पूरी न होगी। कहो, तुम लोग भी इस नेक काममें शरीक होगे, या दूर खड़े तमाशा देखोगे?

सब लड़के एक स्वरमें बोले— हम तुम्हारे साथ हैं।

महमूद—अगर तुमसे कोई पूछे कि मैंने कोई डिक्शनरी दिखाई थी और उसमें प्रो० चटर्जीको Careskania का लफ़्ज़ मिला था, तो तुम साफ़ इनकार कर देना; कहना हम इस बातको जानते ही नहीं। बस, तुम यही समझ लो कि आज कोई वाक़या हुआ ही नहीं। मैं तुमसे यही मदद चाहता हूँ, बोलो, करोगे?

सबने कहा—हम तैयार हैं।

महमूद सिगरेट पीने लगा।

[४]

अब प्रो० चटर्जीको सन्तोष न था। इस नए शब्दके व्यवहा-रके प्रलोभनको वह नहीं रोक सकते थे। कई दिन परेशान रहे। इसके लिए उन्होंने डेढ़ रुपया दिया है। जब तक शब्द उपयोगमें न आ जाय, उन्हें चैन नहीं आयगा। भाग्यवश यह मौक़ा उन्हें शीघ्र ही मिल गया। कालेजका वार्षिक भोज होनेवाला था। इस अवसरपर

विद्यार्थियोंने एक नाटक खेलनेका निश्चय किया। प्रो० चटर्जी उसके प्रबन्धक थे। हर रोज़ एक घण्टा रिहर्सल होता था। एक दिन प्रिंसिपल वाकरने उन्हें बुलाकर अंगरेज़ीमें पूछा—आपके ड्रामेका क्या हाल है? सब लड़कोंको अपना-अपना पार्ट याद हो गया है या नहीं?

च०—कर रहे हैं। आशा है, आपको शिकायतका मौक़ा न मिलेगा।

प्रिंसि०—फ़ीरोज़चन्दने अपना पार्ट याद किया या नहीं? उसका ध्यान रखिये, वह बड़ा careless है।

चटर्जी साहबको अवसर मिल गया। झट बोले—नहीं साहब मेरे विचारमें वह careskania है।

प्रिंसिपल साहबने चौंककर सिर उठाया और हैरान होकर पूछा—यह आपने क्या कहा? वह क्या है?

चटर्जीने फिर दुहराकर कहा—careskania।

प्रिंसिपल—यह शब्द मैंने आज तक नहीं सुना। इसके अर्थ!

च०—बहुत सावधान।

प्रि०—आपने किसी पुस्तकमें देखा है?

च०—जी नहीं; मैंने डिक्शनरीमें देखा है।

प्रि०—हैरानी है, यह शब्द मैंने आज तक नहीं सुना किस डिक्शनरीमें है?

च०—फ़ॉलन साहबकी डिक्शनरीमें।

प्रि०—अगर आपको कष्ट न हो, तो वह डिक्शनरी मुझे भी दिखाइयेगा। मैं आपका कृतज्ञ होऊँगा। मेरे लिए यह शब्द बिल्कुल नया है।

च०—मैं कल वह डिक्शनरी लेता आऊँगा।

थोड़ी देर बाद उन्होंने इस घटनाका ज़िक्र प्रो० मुखर्जीसे किया और कहा, आश्चर्य है, एक अंग्रेज़ कहे कि मैंने यह शब्द कभी नहीं सुना! आपने तो सुना होगा। बड़ा सुन्दर शब्द है।

मुखर्जी—मुझे अफ़सोस है, यह शब्द मैंने कभी नहीं सुना न पढ़ा है; मगर आप ऐसे अप्रसिद्ध शब्दोंका प्रयोग क्यों करते हैं? आजकल अच्छी भाषा वह समझी जाती है, जिसमें एक भी शब्द कठिन न हो।

च०—इस मामलेमे हमारा-तुम्हारा समझौता नहीं हो सकता। मैं सरल भाषाका समर्थक नहीं हूँ। आखिर योग्यता नामकी भी कोई चीज़ है या नहीं?

मुख०—बहुत अच्छा। (मुस्कराकर) हम ऐसी योग्यताके समर्थक नहीं हैं, जो कठिन शब्दोंके बिना एक क़दम भी न चल सके।

च०—अब कल प्रिंसिपल साहबको डिक्शनरी दिखाऊँगा।

मुखर्जी—और कालेजकी डिक्शनरी क्या हुई?

च०—उसमें यह शब्द नहीं है, मैं देख चुका।

मुखर्जी—अरे बन्धु! अब तुम ऐसे शब्द व्यवहारमें लाने लगे, जो डिक्शनरीमें भी नहीं हैं। पहले तुम्हारे शब्द नहीं मिलते थे, अब तुम्हारी डिक्शनरी भी नहीं मिलेगी।

चटर्जी मुस्कराकर बाले—तुम जस मूर्खोंका यही इलाज है कहां तक चलोगे?

प्रो० चटर्जीने आफ़िसमें पहुँचकर महमूदको बुला भेजा, और

कहा—भई, वह अपनी डिक्शनरी तो कल लेते आना। मुझे जरूरत है।

महमूदने चौंककर जवाब दिया—वह डिक्शनरी तो मेरी फूफीका बेटा ले गया।

प्रो० च०—कहां गया है? कब तक लौटेगा?

मह०—अफ्रीका गया है, चार सालमें लौटेगा।

च०—यह तुमने बुरी सुनाई। (एकाएक उछलकर) वह 'डेली हैरल्ड' का परचा तो तुम्हारे पास होगा, जिसमें Careskania का शब्द तुमने देखा था। वही ले आओ।

मह०—(हाथ मलकर) अफ़सोस, उस अखबारका बच्चोंने पतंग बना लीया और फाड़-फूड़कर फेंक दिया।

च०—तो भई! जैसे भी हो, वह डिक्शनरी कहींसे पैदा करो। प्रिन्सिपल साहब देखना चाहते हैं।

महमूद—बहुत अच्छा जनाब! मैं भी कोशिश करूँगा, आप भी कोशिश करें।

महमूदने तो क्या कोशिश की होगी; मगर प्रोफ़ेसर साहबने छुट्टीके बाद कोशिश की। उनके पड़ोसमें एक लड़का एन्ट्रन्समें पढ़ता था। उसके पास यह डिक्शनरी थी। प्रोफ़ेसर साहबने समझा, चलो रोग कटा। मगर जब डिक्शनरी आ गई, तो उसमें Careskania शब्द न था। बाक़ी सब-कुछ वही था। केवल यही एक शब्द न था। प्रोफ़ेसर साहब सन्नाटेमें आ गए। हैरान होकर सोचने लगे—यह क्या? उसमें यह शब्द ज़रूर था। मैंने खुद अपनी आंखोंसे देखा था। यही डिक्शनरी थी, यही संस्करण

था। ईश्वर जाने! यह क्या मायाजाल है। कालेजमें जाकर महमूद और दूसरे छात्रोंसे पूछा, तो सबने कानोंपर हाथ रखा, कि साहब हमें तो कुछ मालूम नहीं। न हमने यह शब्द सुना, न पढ़ा।

प्रोफ़ेसर साहब आगबबूला हो गए। अगर स्कूल होता, तो एक-एकको पकड़कर उसकी खाल उधेड़ देते; मगर यह कालेज था! कालेजके लड़के धौंस नहीं सहते। प्रो० चटर्जी हारकर चुप हो गए। और कर ही क्या सकते थे। सारा दिन प्रिन्सिपल साहबके सामने न गए। डरते थे कि मैं उनके सन्मुख हुआ और उन्होंने पूछा—'वह डिक्शनरी लाए?' तो क्या जवाब दूँगा। मुँह न खुलेगा, आँखें न उठेंगी, ज़मीनमें गड़ जाऊँगा।

[९]

दुपहरके समय आफ़िसमें बैठे थे कि प्रोफेसर जिलानीने आकर पूछा—क्यों मि० चटर्जी! यह Careskania क्या बला है? हमने तो यह शब्द कभी नहीं सुना।

चटर्जी धकसे रह गए। बोले—यह आपसे किसने कहा?

जिलानी—कई लड़के आकर पूछते हैं कि इसके क्या अर्थ हैं। मैंने पूछा—तुमने यह शब्द कहासे सुना है? उन्होंने आपका नाम लिया। मेरे विचारमें अंग्रेज़ी भाषामें यह शब्द है ही नहीं। आपने कहा देखा है?

चटर्जीने उत्तर न दिया। मेज़पर पड़े काग़ज़पर पेंसिलसे लकीरें खैंचने लगे।

उसी समय एक दूसरे प्रोफ़ेसर खन्ना आकर बोले—अरे या चटर्जी ! यह Careskania शब्दके क्या अर्थ हैं ?

चटर्जीने उनकी ओर देखकर रूखाईसे उत्तर दिया मैं नहीं जानता।

खन्ना—आश्चर्य है, तुम्हीं एक शब्द बताते हो, तुम्हीं कहते हो, मैं नहीं जानता !

च०—(क्रोधसे) कौन कहता है, यह शब्द मैंने बताया !

खन्ना—फ़ोर्थ इयरके लड़के कहते हैं।

चटर्जीकी आंखोंसे आगकी चिनगारियां निकलने लगीं। बोले-सब धूर्त हैं ! मुझे तंग करते हैं।

खन्ना साहबने बातको और नहीं बढ़ाया।

३ बजेके लगभग चटर्जी घर जाने लगे, तो दुर्भाग्यवश प्रिन्सिपल साहब सामने आ गए।

अब चटर्जीकी दशा देखने योग्य थी। चेहरा लाल हो गया था। आंखें ऊपर नहीं उठती थीं। देनदार साहूकारसे बच बचकर जा रहा था, एकाएक साहूकार आकर सामने खड़ा हो गया। अब देनहार क्या करे ? उनका शरीर कांप रहा था ! सोचते थे, ज़मीन फटे, तो उसमें समा जायँ। अगर प्रिन्सिपल साहब पूछ बैठे, तो क्या उत्तर दूँगा ? मगर प्रिन्सिपल साहबने कुछ नहीं पूछा, और अपने कमरेमें चले गए। चटर्जीने धैर्यका श्वास लिया। इतनेमे फ़र्स्ट इयरके एक छात्रने आकर शिष्टतासे नमस्कार किया और पूछा—प्रो० साहब ! Careskania का क्या अर्थ है ?

चटर्जीसे सहन न हो सका। गरजकर बोले—तुम्हारा सिर !

छात्र सहम गया।

उसे महमूद और गन्डासिंहने भेजा था। उसे बेचारेको क्या मालूम था कि यह शरारत है। चुपचाप सिर झुकाकर चला गया। इस समय उसकी आंखोंमें आंसू थे।

चटर्जी घर पहुँचे, तो नौकरने एक पत्र दिया। खोलकर देखा, तो उसमें लिखा था—My dear Careskania ! चटर्जीने पत्रको फाड़कर फेंक दिया, और कमरेमें जा बैठे।

अब लड़कोंको एक तमाशा मिल गया। ज्यों ही उन्हें देखते, पुकारकर कह देते—Careskania जा रहे हैं। फिर एक दूसरेकी तरफ़ देखते और हँसने। कभी एक दूसरेसे कहते कि ज्यादा बकवास करोगे, तो Careskania बना देंगे। इसके साथ ही कह-कहेपर क़हक़हा लगता, और प्रो० साहब जल-भुनकर रह जाते।

कालेजकी कोई दीवार और बोर्डिंगका कोई कमरा ऐसा न था, जहां Careskania महाराज शोभायमान न हों। यहां तक कि दुष्टोंने शौचगृहके बाहर भीतर भी यह शब्द लिख दिया। कुछ ही दिनोंमें यह कहानी दूसरे कालेजोंमें भी मशहूर हो गई।

एक दिन किसीने फ़ोनपर बुलाकर कहा—मैंने आपको नहीं बुलाया। प्रो० Careskania को बुलाया है। अगर हों, तो ज़रा फ़ोनपर भेज दें। एक दिन सिनेमा देखने गए, तो किसीने चिल्लाकर कहा—थ्री चिअरज फ़ॉर प्रो० केअरस्कानिया। चटर्जीकी आंखोंमें आंसू आ गए। जिधर जाते, Careskania के सिवाय और कुछ दिखाई न देता। अपने ऊपर झुँझलाते कि कैसी मूर्खता हो गई। किसीसे

मिलते जुलते भी न थे। सम्भव है, वह सहानुभूतिके तौरपर यही कथा छेड़ दे और उनको और झेंपना पड़े। जीना कठिन हो गया। हर समय सहमे सहमे रहते थे! वह विनोदप्रियता, वह हँसना-खेलना जाने कहां चला गया! ऐसा मालूम होता था, जैसे यह आदमी सदा कुढ़ता रहता है, जैसे इसने हँसना सीखा ही नहीं है।

शोक, खीझ और बेबसीकी ऐसी करुण मूर्ति शायद ही किसीने देखी होगी।

[६]

एक दिन उन्होंनें महमूदको अपने घर बुलाया। चाय पिलाई, मिठाई खिलाई और तब प्रयोजन प्रकट किया। बोले—महमूद! तुम मेरे विद्यार्थी हो, मैं तुम्हारा प्रोफ़ेसर हूँ। मगर इस समय हम एक—दूसरेके मित्र हैं। एक बात बताओगे?

महमूदको प्रोफ़ेसरकी दयनीय दशापर तरस आ गया। आदर और नम्रताके सन्मुख आशिष्ट और अनौचित्य नहीं ठहरता। उसने सिर झुकाकर उत्तर दिया—पूछिये, मैं हर बातका जवाब देनेको तैयार हूँ।

च०—यह Careskania का क्या राज है। तुम्हारे पास जो डिक्शनरी थी, उसमें यह शब्द मैंने अपनी आंखों देखा था। अब जो डिक्शनरी देखता हूँ, यह शब्द ग़ायब! यह क्या जादू है?

महमूद—(चाबियोंके गुच्छेसे खेलते हुए) असलमें बात यह है कि फ़ालन डिक्शनरीमें इस क़िस्मका कोई लफ़्ज़ नहीं था। मैंने आपसे झूठ कहा था कि मैंने यह लफ्ज देखा है। जब आपने कहा,

डिक्शनरी दिखाओ, तो मैंने एक प्रेससे इन्तज़ाम किया कि वह मुझे डिक्शनरीके दो पृष्ठ छाप दे। पहले तो प्रेस-मालिक मानता ही न था। बड़ी मुश्किलसे माना। इन दो पन्नोंका मैटर वही था, सिर्फ़ यह लफ्ज़ ज्यादा था। टाइप वग़ैरह सब वही था। मैंने यह भी खयाल रखा था कि काग़ज़ भी वैसा ही हो, ताकि कहीं आपको शक न गुज़रे। जब यह दो पन्ने छपकर आ गए, तो मैंने पहले पन्ने निकालकर यह पन्ने लगा दिए। अगर आप ज़रा ग़ौरसे देखते, तो ज़रूर भांप जाते।

च०—अरे! ऐसा सरल उपाय! मगर काली मांकी सौगन्ध, मुझे सन्देह तक नहीं हुआ। अब सोचता हूँ तो मालूम होता है कि मैं मूर्ख था, जो इतनी बातको भी न समझ सका। मानता हूँ, लेकिन एक बात और बताओ।

महमूद-(मुस्कराकर, मगर सिर झुकाए हुए) वह भी कहता हूँ। हम आपके नए-नए लफ्ज़ोंसे तंग आ गए थे। यह रास्ता सिर्फ़ इसलिए पकड़ा था·······

च०—हां हां, रुक क्यों गए? ताकि मैं इससे बाज़ आ जाऊँ। बहुत अच्छा, मैं अब ऐसे अप्रसिद्ध और कठिन शब्दोंका कभी प्रयोग न करूँगा।

महमूद—(शरमिंदा होकर) अब मैं क्या कहूँ! गुस्ताखी हुई। अब माफ़ कर दें, तो फिर ऐसी ग़लती कभी न होगी।

च०-(मुस्कराकर) वैसे ही माफ़ी न मिलेगी। तुम्हें इसके लिए जुर्माना देना होगा। बोलो, तैयार हो?

मह०-(जल्दीसे) जी हां! मैं बडी खुशीसे तैयार हूँ।

च०-इतवारको खाना यहां खाओ।

मह०—(चटर्जीकी ओर देखकर) आप यह कष्ट क्यों करते हैं ?

च०—इसमें मुझे कोई कष्ट न होगा, बल्कि प्रसन्नता होगी।

महमूद चलनेके लिए उठकर खड़ा हो गया और बोला—तो मेरे दोस्तोंको भी बुलाइये, उनके बगैर जल्सेका रङ्ग न जमेगा।

च०—(तौलिया कुर्सीपर रखते हुए) वह तुम्हारे दोस्त कौन हैं ?

मह०—एक गन्डासिंह, दूसरे सुन्दरलाल।

च०—मुझे इन्कार नहीं। मगर उन्होंने क्या किया है, जो उनका मुँह मीठा कराया जायगा ?

मह०—(ओठोंमें मुस्कराकर) इस नेक काममें वे भी बराबरके हिस्सेदार हैं। छपाईके पैसे उन्होंने भी दिये थे। जमातके लड़कोंको उन्होंने राज़ी किया था कि साफ़ इन्कार कर जाना कि हमें कुछ मालूम नहीं। अगर वह मेरे साथ न होते, तो यह कामयाबी मुश्किल थी। अब उनके बग़ैर अकेला दावत उड़ा लूँ, तो कहेंगे, बेवफ़ा निकला। मैं शरारतोंसे बाज़ आ जाऊँगा, मगर उनकी शरारतें ख़त्म नहीं होंगी। अगर वे भी आपका नमक खा लेंगे, तो नमकहरामी न करेंगे।

चटर्जी साहबने मुस्कराकर जवाब दिया—चलो भाई ! उनको भी बुला लो। एक समयमें तीन शैतान घरपर आ रहे हैं, भगवान भला करें !

चैननगर के चार बकार

[१]

कुछ समय गुज़रा, उत्तरी भारतवर्ष में दो पहाड़ियों के बीच में एक हरा-भरा गाव आबाद था, जिसका नाम चैन नगर था। यहां के लोग सीधे सादे और मेहनती थे, अपना अपना काम अपने अपने हाथ से करते थे, और किसी को किसी से कोई शिकायत न थी।

चैन नगर के लोग दिन भर काम करते थे, इसलिए वहां बीमारियां न थीं, दवाइयां न थीं, वैद्य न थे। वहां के लोग अमन अमान और प्यार मुहब्बत से रहते थे, इसलिए वहां कचहरियां न थीं, वकील न थे, जेलखाने न थे। वहां के लोग सरल स्वभाव थे, इसलिए वहां चोरियां न होती थीं, न वहा पुलिस थी, न बंदूकें, न तलवारें, न तोपें थीं। वहा के लोग जितेंद्रिय थे, इसलिए वहा न रूप-यौवन की दूकानें थीं, न शराब थी, न क़त्ल-खून की घटनाएं होती थीं। वहां के लोग अतिथि-सत्कार को धर्म समझते थे, इसलिए वहां न

धर्म-शालाएं थीं, न सराएं थीं, न होटल थे। वहां मेहनत-मज़दूरी के मोटे क़ानून के सिवा दूसरा कोई क़ानून न था। वह क़ानून यह था कि जो काम करे खाए, जो बेकार रहे भूखों मरे। सब काम करते थे, सिर्फ़ चार आदमी ऐसे थे, जिनको बेकारी पसंद थी। वे भूखों मरते थे और दूसरों के दान पर जीते थे। आख़िर एक दिन उन्हें भी लोगों ने गांव से निकाल दिया। अब वहां सब काम करने वाले थे, बेकार कोई भी न था।

मगर शैतान को असभ्य मूर्खों की यह छोटी सी दुनिया पसन्द न आई, और उसने निश्चय कर लिया कि मैं इसे सभ्य बनाऊंगा और यहां के रहनेवालों के लिए उन्नति और इक़बाल के दरवाज़े खोल दूंगा।

[२]

दूसरे दिन शैतान के इशारे से एक खूबसूरत और अमीर सौदागर चैन नगर में आया और सारा गांव देखने के बाद बोला—अफ़सोस तुम लोग बिलकुल गंवार और असभ्य हो। पता नहीं, इस हाल में तुम जीते कैसे हो?

लोगों ने यह बात सुनी, तो आश्चर्य से सौदागर का मुंह देखने लगे।

सौदागर ने कहा—मैंने सारे संसार की सैर की है, और मैंने बड़ी बड़ी अजीब चीज़ें देखी हैं। मगर ऐसा ग़रीब और दीनहीन गांव मैंने और कहीं नहीं देखा।

लोगों ने यह सुना और कहा—हमें तो यह मालूम ही न था। क्या हम अब सभ्यता नहीं सीख सकते ?

सौदागर ने उत्तर दिया—मुझे चार आदमी दे दो, और मैं इक़रार करता हूं कि तुम्हारे गांव का एक एक आदमी सभ्य बन जाएगा। मगर शर्त यह है कि वे चारों बेकार हों।

चैन नगर में एक भी बेकार न था। लोग निराश हो गए और बोले—अफ़सोस ! हमें क्या ख़बर थी कि कभी हमको बेकारों की भी ज़रूरत पड़ जाएगी। यह ख़बर होती तो हम उन चार बेकारों को गांव से कभी न निकालते।

मगर सौदागर हताश न हुआ, और उसने उन्हीं लोगों में से चार आदमी चुन लिए। उसने उन्हें खाने को अच्छे अच्छे भोजन दिए, पहनने को क़ीमती और महीन वस्त्र दिए, और उसने कहा—जाओ, गांव की सैर करो। तुम्हारा यही काम है।

और वे चार बेकार गांव में घूमने लगे। मगर कुछ ही दिनों में उनका जी उदास हो गया, और उन्होंने सौदागर से कहा—हमें कुछ काम दीजिए। हम बेकार नहीं रह सकते।

सौदागर ने मुस्करा कर उनकी तरफ़ देखा, और धीरे से कहा—तुम बड़े आदमी हो। बड़े आदमी काम नहीं किया करते। काम करना मजूरों और कुलियों का काम है।

चारों बेकार यह सुनकर कि अब वे बड़े आदमी बन गए हैं, खुशी से फूले न समाए और बोले—तुम कितने दयालु हो ! तुमने हमें बड़ा आदमी बना दिया है। अब सचमुच हमें आप काम करने की क्या ज़रूरत है ? हमारा काम दूसरे लोग किया करेंगे। मगर

हमारे पास उनको देने के लिए तो पैसा भी नहीं है। न हम खेती करते हैं, न हमारे पास अनाज है।

सौदागर एक बार फिर मन को मोह लेने वाले ढंग से मुस्कराया और बोला—तुम बड़े आदमी हो। बड़े आदमी अपना काम बिना कुछ दिए ही करा लिया करते हैं। मगर मैं तुम्हारे लिए ख़र्च करने को भी तैयार हूं। इसके बाद उसने उनसे कहा—इस गांव के लोगों को बुलाकर उनसे कहो कि वे तुम्हारे लिए पांच महल बना दें। जो ख़र्च होगा, मैं दूंगा।

दूसरे दिन से कई लोगों ने खेती-बारी का काम बन्द कर दिया, और महल बनाने लगे।

महल बन गए। यह महल बड़े विशाल और सुन्दर थे। और इन्हें देखकर दिलकी कली खिल जाती थी, मगर गांव की फ़सल मारी गई। सौदागर ने लोगों को रुपया दिया, मगर रुपए से किसी का पेट न भरता था। लोग ज़ार ज़ार रोते थे और कहते थे, हाय! अब क्या होगा?

सौदागर ने एक बेकार को बुलाकर कहा—कुछ आदमियों को नौकर रख लो। उन्हें बाहर भेजकर सस्ते दामों में अनाज ख़रीदो और यहां मंगवा कर महंगे दामों में बेचो। जो बचे वह तुम्हारा हिस्सा है।

उस बेकार ने ऐसा ही किया, और यह पहला अवसर था जब चैननगर के निवासियों ने बाहर से आया हुआ अनाज खाया। उन्होंने कहा—यह आदमी कितना नेक है? अगर यह न होता तो हम और हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जाते।

अब उनको बाहर की चीज़े अच्छी मालूम होने लगीं, और अनाज मंगवाने वाले उस बेकार ने कई और चीज़ें मंगानी शुरू कर

दीं। कुछ ही महीनों में वह अमीर हो गया और उसने कई दूकानें खोल कर उनपर अपने कारिन्दे बैठा दिए। मगर वह अपने हाथ से कोई काम न करता था, उसका सारा काम दूसरे लोग करते थे।

[३]

दूसरे साल जब फ़सल खड़ी थी, तो एक रात को कुछ हरिण आए और फ़सल का कुछ भाग ख़राब कर गए। सौदागर ने गांव के लोगों को गांव के चौक में जमा किया, और कहा—इस तरह तो ये जानवर तुम्हारी सारी फ़सल ख़राब कर जाएंगे। अगर तुम कहो तो मेरा आदमी ऐसा प्रबंध कर सकता है कि फिर कभी ये हरिण तुम्हारे खेतों के पास तक न फटक सकें।

चैन नगर के लोगों ने कहा—देखो, यह आदमी कैसा दाना है। अगर यह न होता, तो हमारे सारे खेतों को हरिण ही खा जाते।

अगले दिन दूसरे बेकार ने गांव के कुछ लोगों को लाठियां दे कर खेतोंकी रखवाली के लिए खड़ा कर दिया। जब फ़सल कटी तो उसने अपने नौकरों से कहा—आधा अनाज मेरे पास उठा लाओ, आधा उनके लिए रहने दो। नौकरों ने ऐसा ही किया। बेकार ने तीन हिस्से आप रख लिए, एक हिस्सा नौकरों को बांट दिया।

यह पहला अवसर था जब चैन नगर के लोगों ने दूसरों के द्वारा रक्षा की सुविधा का अनुभव किया, और यह सोचने की ज़रा भी परवा न की कि हरिण कितना खाते और हमने अब कितना दिया? मगर लोगों को जो अनाज मिला, वह उनकी ज़रूरत से कम

था। चैन नगर में चोरियां होने लगीं। खेतों के रक्षक ने कहा—अगर तुम चाहो तो मैं तुम्हारे मकानों के द्वार पर अपने पहरेदार खड़े कर सकता हूं। फिर क्या मजाल जो तुम्हारा एक सेर अनाज भी चोरी चला जाए।

गांव वालों ने कहा—बड़ी खुशी से।

मकानों और दूकानों पर पहरेदार खड़े हो गए। चोरी बन्द हो गई, मगर चोरी को रोकने के लिए जो ख़र्च हुआ वह चोरी की रक़म से कहीं ज्यादा था।

इस तरह दूसरे बेकार का कारबार भी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने भी कई महल खड़े कर लिए। मगर वह अपना काम आप न करता था, उसके सारे काम दूसरे लोग करते थे।

कभी वह दिन था जब चैन नगर में सब ग़रीब थे, मगर खाने-पीने की किसी को कमी न थी। अब कारबार चलता था, मगर लोग भूखों मर रहे थे। परिणाम यह हुआ कि लड़ाई झगड़े शुरू हो गए। वह प्यार, वह मुहब्बत, वह सादगी, वह पवित्रता न जाने कहां चली गई? अब लोगों को एक दूसरे का ज़रा भी ख्याल न था। बात बात में छुरियां चलने लगीं। चैन नगर में बेचैनी फैल गई। सौदागर ने यह दशा देखी, तो लोगों से कहा—अगर तुमने इन बातों का इलाज न किया तो मुझे डर है कि तुम्हारी प्राचीन और सुन्दर नगरी नष्ट हो जाएगी। क्या तुम कोई ऐसा प्रबन्ध नहीं कर सकते कि ऐसी दुर्घटनाएं सदा के लिए बन्द हो जाएं?

लोगों ने सौदागर की तरफ़ देखकर सिर झुका लिया, और धीरे

से कहा—कुछ आप ही करें। हमसे तो कुछ न होगा।

सौदागर ने जवाब दिया–अच्छा, हम सोचेंगे।

उसी दिन एक किसान और एक महाजन में झगड़ा हो गया। महाजन का कहना था कि इसके ज़िम्मे मेरा २० सेर अनाज है। किसान कहता था कि यह झूठा है, मुझे इसका केवल दस सेर अनाज देना है। दोनों लड़ते थे, झगड़ते थे और एक दूसरे को गालियां देते थे। एक दूकानदार ने इसकी ख़बर जाकर सौदागर को दे दी। सौदागर ने उसी समय एक आदमी भेज कर दोनों को अपने पास बुलाया और तीसरे बेकार से कहा—इनके झगड़े का फ़ैसला कर दो।

[४]

बेकारने दोनों की बात चीत सुनी और फिर किसान से कहा–तूने महाजन से २० सेर अनाज भी लिया है, और उसे गालियां भी दीं हैं इस लिए मेरा फ़ैसला है कि तू इसे २५ सेर अनाज दे।

महाजन ने खुश होकर कहा—कैसा अच्छा फैसला है। २० सेर न देता था, अब २५ सेर देना पड़ा।

किसानको २५ सेर देना पड़ा।

अब उस बेकारने महाजन की तरफ़ देखकर उस से कहा—तेरे पास क्या प्रमाण है कि तूने इसको २० सेर अनाज दिया है? उसका बयान है कि उसने केवल १० सेर लिया है।

महाजन चुपचाप खड़ा ज़मीन की तरफ़ देखता रहा। उसके पास कोई प्रमाण न था।

बेकार ने कहा—तुझे केवल १० सेर अनाज मिल सकता था, मगर तूने उसे गालियां दी हैं और गांव के लोग इसकी गवाही देने को तैयार हैं, गालियां देने का तुझे कोई अधिकार न था। क्या तेरे पास इसका कोई जवाब है ?

महाजन चुपचाप खड़ा भूमि की तरफ़ देखता रहा। उसके पास कोई जवाब न था

बेकार ने कहा—मेरा फ़ैसला यह है कि तेरे १० सेर अनाज में से ५ सेर जुर्माने का काट लिया जाए, ५ सेर तुझे दे दिया जाए।

महाजन क्या कह सकता था ?

किसान ने खुश होकर कहा—अच्छा फ़ैसला है। १० सेर न लेता था, अब ५ ही सेर लेना पड़ा।

लोगों ने यह सुना तो कहा—हम कैसे खुशनसीब हैं। अगर यह आदमी न होता तो हम आपसमें लड़ लड़कर मर जाते।

इस तरह तीसरे बेकार का काम भी चल निकला, और थोड़े ही दिनोंमें उसके पास भी कई आलीशान महल हो गए। मगर वह भी कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसके सारे काम दूसरे लोग करते थे।

मगर अभी चौथा बेकार ग़रीब था। सौदागर ने उसके लिए कमाई का कोई साधन सोचने की बहुत कोशिश की। सोच सोचकर उसके सिर में दर्द होने लगा, उसकी कनपटियां फटने लगीं, मगर उसे कोई रास्ता दिखाई न दिया। हार कर वह शैतान के पास गया, और उसे तीन सालों की कहानी सुनाकर

बोला—गांवकी पौन आबादी पर अब हमारा अधिकार हो चुका है, मगर अभी एक बेकार बाक़ी है। अगर उसके लिए कोई अच्छा सा काम निकल आए तो चैन नगर का एक एक आदमी हमारी मुट्ठी में आ जाए।

शैतान ने अपने नायब की पीठ पर धीरे से थपकी दी और अपनी उल्लूकी सी गोल गोल और छोटी छोटी आंखों से उसकी तरफ़ देखकर कहा—जाओ, ! वहां एक लोहे की चक्की लगा दो। बाक़ी मैं आप समझ लूंगा।

[९]

सात दिन के अंदर अंदर चैन नगर के बाहर खुली जगह में लोहे की चक्की लग गई। रात के समय शैतान ने आकर उसमें अपनी शैतान-शक्ति दाख़िल कर दी। दूसरे दिन से इसने गेहूं, बाजरा, मक्की और चने का आटा पीसना शुरू कर दिया। और यह आटा इतना महीन था, कि गांव के गंवार लोग देखकर दंग रह गए। उन्होंने ऐसा आटा आज तक न खाया था। एक ही दिन में चैन नगर की सैकड़ों पत्थर की चक्कियां बेकार हो गईं, और एक ही दिन में चैन नगर की सैंकड़ों विधवा स्त्रियां और बिना बाप के बच्चे भूखों मरने लगे। मगर और लोग खुश थे, और अपने सौभाग्य पर फूले न समाते थे।

चौथा बेकार सामने एक तख़्त पोश पर बैठा हुक्क़ा पीता रहता था। वह साँझके समय इतना कमा कर उठता था, जितना गांव का

कोई दूसरा आदमी न कमाता था। उसने सौदागर की राय से वहां और भी कई कलें लगा दीं, और गाव के कई और ग़रीबों को भी दाने दाने का मोहताज कर दिया। इस तरह शैतान की मेहरबानी से चौथा बेकार भी अमीर हो गया। मगर वह भी अपना कोई काम अपने हाथ से न करता था। उसका सारा काम गांव के दूसरे लोग करते थे।

चैननगर आज भी उत्तरी भारत की उन दो पहाड़ियों के बीच मे उसी तरह आबाद है। अब वहां देखने योग्य कई इमारतें बन गई हैं। वहां कचहरियां हैं, वहां सराएं और धर्मशालाएं है, वहां बड़े बड़े कारख़ाने हैं, वहां ऊंचे ऊंचे महल हैं। और शहर के बीचों बीच चौक में उस सौदागर का सत्तर फुट ऊंचा बुत खडा है। अगर कोई मुसाफ़िर उधर जा निकलता है तो गांव की शान-शोभा देखकर उसकी तबीयत हरी हो जाती है, उसका हृदय-कमल खिल उठता है। मगर अब वहां का क़ानून बदल गया हैं। पहले सब काम करने वाले खाते थे, बेकार भूखों मरते थे। अब बेकार ऐश करते हैं, काम करने वाले भूखे मरते हैं।

बारह साल बाद

[१]

याद करती हूं, मगर याद नहीं आता, कि मैंने पहले पहल उन्हें कब और कहां देखा था? हां, इतना याद है, कि जब मुझे समझ आई, और जब आंखें अपने और पराए में भेद करने लगीं, तो हृदयपट पर उनकी तस्वीर खिच चुकी थी। ऐसा हंसमुख, आदमी सारी मथुरा में न होगा। मेरा ब्याह उनसे बहुत ही छोटी उम्र में हो गया था। जब वह मुझे देखते थे, तो प्रेम और प्रसन्नता के भाव उनकी आंखों में आ बैठते थे। मेरे पास रुपए पैसे की कमी न थी। जो चाहती, मंगवा लेती। मेरे कपड़े मेरे गहने, मेरा ऐश-आराम देखकर मेरी सहेलियां हैरान रह जाती थीं। उन्हें मेरे सामने बोलने की हिम्मत न होती थी। स्त्री को और क्या चाहिए? मेरा जीवन आनन्द का जीवन था। नारी हृदय जो जो चीज़े मांगता है, मुझे सब प्राप्त थीं। मुझे किसी चीज़ की कमी न थी।

इसी तरह मेरे जगत और जीवन की सोलह बहारें बीत गईं, खुशी से मेरे पांव ज़मीन पर न पड़ते थे। जिस तरह जमना मैया पृथ्वी पर बहती हुई अमृत से भरी हैं, उसी तरह मेरा हृदय हर्ष से उमड़ा पड़ता था। यह वह हर्ष था जो दुनिया की वासनाओं से लिप्त नहीं होता और जो इस असार संसार में कहीं कहीं नज़र आता है। मगर अफ़सोस! यह साल मेरे जीवन की खुशियों का आख़री साल था। जिस तरह पूर्णिमा का चांद अपना पूर्ण रूप दिखाकर घटना शुरू हो जाता है, जिस तरह बरसाती नाला पर्वतपर वर्षा होने पर छलकता है और इसके बाद उतरने लग जाता, है, उसी तरह मेरी मस्ती का जीवन सूखने लगा। इसके बाद मुझे वह खुशी, वह प्रसन्नता, वह सच्चा आनंद एक दिन भी प्राप्त नहीं हुआ। किसे पता था कि मेरे जीवन की दुपहर के पीछे दुःख और अनुताप की ऐसी अंधेरी शाम छिपी होगी।

[२]

सावन का महीना था, ज़मीनपर मख़मल बिछी थी, आसमानपर काजलके पहाड दौड़ते थे और गरजते थे। मैंने अपने कीमती गहने पहने, और बसंत की देवी बनकर शतरंजी-बाग़ म दाख़िल हुई। वहां मेरे पति ने बाग़ का एक भाग अपने लिए ले रक्खा था, और कनातें तानकर उसे बाक़ी बाग़ से अलग करा लिया था। मुझे देखकर उनपर भावुकता की मस्ती छा गई। उन्होंने मुस्कराते हुए आकर मेरा हाथ थाम लिया, और मुझे लेजाकर एक झूले के पटड़े पर बैठा दिया। मैं झूला झूलती थी, और गाती थी। वह झूला झुलाते थे, और झूमते थे।

कनात एक जगह से फटी हुई थी और उसमें से बाहर की चीज़ें भी दिखाई देती थीं। मगर यह कनात नहीं फटी थी, मेरी क़िसमत फट गई थी। उसमे से वह कुछ देखने लगे और फिर उसे देखने में तन्मय हो गए। यहां तक कि उन्हें मेरी भी सुध न रही। मैं हैरान थी, यह क्या है जिसे वे इतने ध्यान से देख रहे हैं। मेरे नारी हृदय में एक काला संदेह पैदा हुआ, मगर मैंने उसे ठुकरा दिया। मुझे उनपर पूरा विश्वास था। यह संदेह उनके प्रेम, आचार और सत्य के साथ घोर अन्याय था। मगर वह उसी तरह, उसी ध्यान से, उसी तरफ़ देख रहे थे।

मै पटडे से उतरकर धीरे धीरे उनके निकट गई और बाहर देखा—वह कोई स्त्री थी और उनकी आंखों में सौन्दर्य की प्यास थी। मेरा दिल दहल गया। में ने उस स्त्री की तरफ़ फिर देखा। वह सुन्दर थी मगर उसके सौन्दर्य में ज़हर मिला हुआ था। नाग जितना सुन्दर होगा उतना ही भयानक भी होगा। जब मैं छोटी थी, उन दिनों हमारे यहां एक मिशनरी लेडी आया करती थी। उसने मुझे कई दफ़ा आदम हव्व और सांप की कहानी सुनाई थी। आज शतरंजी बाग़ में वही भूली हुई आदमी औरत और सांप की कहानी याद आ गई। सोचने लगी, क्या मेरे लिए भी यह बाग़ बाग़-अदन बन जाएगा? क्या वह सांप जिसने हव्वा से स्वर्ग छुड़ाया था, हव्वा की बेटी से भी स्वर्ग छुड़वाकर रहेगा! मैं कांप गई! मेरा लहू मेरी रगों में ठंडा हो गया मगर मेरी आँखों से आग निकल रही थी।

मैंने उनके कंधों पर हाथ रख दिया और कांपते हुए स्वर में कहा—क्या वह बहुत खूबसूरत है?

वह चौंक पड़े। उनकी निगाह बारबार बाहर दौड़ती थी। मगर मुझे देखकर शर्मिंदा हो गए। उन्होंने बनावटी सादगी से मेरी तरफ़ देखा, मानो वह उधर वैसे ही देख रहे थे। उनका कोई विशेष उद्देश्य न था। और तब धीरे से कहा—कौन बहुत खूबसूरत है? यह तुमने क्या कहा?

मेरे क्रोध पर तेल छिड़का गया। मैंने उस विष कन्या की तरफ़ अपने प्रारब्ध की भांति कांपती हुई उंगली से इशारा किया और कहा—वही जिसको बड़े ध्यान से देख रहे थे!

वह—मैं उसे नहीं देख रहा था।

मैं—उसे नहीं देख रहे थे, तो और किसे देख रहे थे?

वह—मैं उस बच्चे की तरफ़ देख रहा था।

मैंने देखा वहां कोई बच्चा न था—कौन सा बच्चा? वहां तो कोई बच्चा नहीं।

वह—अब उसकी मां उसे लेकर चली गई है।

मैं—कैसी बातें करते हो तुम। मुझे धोका न दो। मैं अनजान लड़की नहीं, जो ऐसी बातों से बहल जाऊंगी। मैं स्त्री हूं और स्त्री ऐसी बातों खूब समझती है।

मैंने देखा, उनकी आंखों में हिम्मत की जोत नहीं रही। फिर भी उन्होंने मेरी तरफ़ देखा और अपने मनकी सारी शक्ति जमा करके कहा—यह तुम्हें कैसा संदेह हो रहा है। मैंने तो ऐसा मौका तुम्हें आजतक कभी नहीं दिया।

मैंने एक बार फिर उनकी आंखों की तरफ़ देखा—वहां पाप

की शरम बैठी थी। पहले, वहां सच्चे प्यार का प्यास खड़ी होती थी। मैंने मुंह से कुछ न कहा, मगर मेरी आंखों ने सब कुछ कह दिया, और उनकी आखोंने सब कुछ समझ लिया।

[३]

अब वह घर से बाहर रहने लगे। मैंने कई बार उनकी राह देखते देखते रातें आंखों में काट दीं। मगर उनको मेरी इस वेदना की ज़रा भी परवाह न थी। मैं रात दिन रोती रहती थी, और जब ज्यादा व्याकुल होती थी, तो उनके पांव में गिर पड़ती थी, मगर वह फिर भी परवाह न करते थे। यह बेपरवाही असह्य थी। प्रेम सब कुछ सह सकता है, मगर बेपरवाही नहीं सह सकता। इसका एक भी वार सहना उसकी शक्ति से बाहर है। आख़िर मैंने एक दिन कहा—यह रंग कबतक रहेगा?

उनको आश्चर्य हुआ। उनको आशा न थी कि मैं अब भी उनसे इस तरह बात कर सकूंगी। शायद उनका ख़याल था कि स्त्री सिर्फ़ पति की सेवा के लिए पैदा की गई है। स्त्री का कर्तव्य है कि सारी सारी रात पति का रास्ता देखे, और जब वह घर आए, और चाहे किसी जगह से आए और किसी तरह आए तो उसे हंसकर मिले और यह न पूछे—मैं जाग जागकर तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही हूं, तुम कहां थे और क्या कर रहे थे? इसलिए उनको मेरे सवाल से आश्चर्य हुआ; तेज़ होकर बोले—कैसा रंग?

मैं—यही तुम्हारा नया शौक़।

बाल पाप कांपता है मगर जवान पाप बेबाक हो जाता है। कहने लगे—यह नया शौक़ आजीवन रहेगा।

मैं—यह बात है?

वह—हां! यह बात है। कुछ और कहना है तो वह भी कह लो।

मैं—तो मुझे थोड़ा ज़हर ला दो। खाकर सो रहूं। यह रोज़ रोज़ की जलन नहीं सही जाती।

इन शब्दों में कैसी निराशा भरी थी, इस से कैसी वेदना उबली पडती थी। मगर उनपर ज़रा असर न पड़ा। बोले—ज़हर खाना हो तो मां-बाप के यहां चली जाओ। महलों में रहती हो, फूलों पर सोती हो, फिर भी मरने का चाव है, तो मैं कुछ नहीं कर सकता।

मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। एक वह दिन था जब मुझे ज़रा सा उदास देखकर भी वह व्याकुल हो जाते थे। एक यह दिन था जब मैं फूट फूटकर रोती थी, मगर उनको ज़रा भी परवाह न थी। मैंने रोते रोते कहा—इन महलों को आग लग जाए। मैं अपना पुराना ज़माना चाहती हूं। अगर पता होता कि तुम ऐसे निर्मोही हो जाओगे तो भूल कर भी तुम से नेह न लगाती।

वह—नेह अब तोड़ लो, और जहां जाना हो, चली जाओ।

मैं तड़पकर बोली—क्या कहते हो, अब चली जाऊं?

वह—हां हां, चली जाओ। मैं तुम्हें कभी न रोकूंगा।

मैं—हाथ मलमलकर पछताओगे, त्रिया-हठ मशहूर है।

वह—जब पछताना होगा, तो पछता लूंगा। इस समय तो त्रिया हठ तोड़ने की ख्वाहिश है।

यह मेरी बे-इज्ज़ती थी। मेरा खून खौलने लगा। बोली-तो मैं अब ऐसी बुरी हो गई, कि तुम मुझे एक वेश्या के लिए त्याग रहे हो। मगर मेरी बात दिल पर लिख रखो, वह एक दिन तुम्हें धोखा देगी।

वह—मुझे तुम धोखा दे सकती हो। मुझे वह धोखा नहीं दे सकती।

मैं—तुमने मेरा उससे मुक़ाबला किया है। क्या वह मुझसे अच्छी है?

वह—वह तुमसे हजार गुना अच्छी है।

मेरी देह में आग लग गई। चीख़कर बोली—वह मुझ से हज़ार गुना अच्छी है?

वह—हां इससे भी ज्यादा—लाख गुना।

मैं—वह निर्लज्ज! वह रुपए की गुलाम! वह पाप की तस्वीर! वह पृथ्वी का भार!

वह—वह सब कुछ है, मगर फिर भी तुमसे अच्छी है।

मैं—तो मैं भी अच्छी बनकर दिखाऊं तुम्हें?

वह—किस तरह?

मैं—जिस तरह वह अच्छी है! उसी तरह अच्छी बनकर।

उनका चेहरा पीला पड़ गया। मेरे दिल में खुशी की गुद-गुदी होने लगी। चिढ़ाने को बोली—जानते हो, वह क्यों अच्छी है? क्यों कि वह बाज़ार में बैठती है, हरएक से मिलती है, और

अपना प्रेम पैसा लेकर बेचती है। क्या तुम चाहते हो, मैं भी ऐसी ही बन जाऊं?

उनका मुंह पहले पीला पड़ा था, फिर लाल हो गया। क्रोध से होंट काटते हुए बोले—अगर तुम्हारे दिल में यह अरमान है तो, इसे भी पूरा कर लो।

मैं—बहुत अच्छा! देखो, फिर न कहना।

वह झल्लाकर बोले—इसी समय निकलो। और जो जी में आए, कर गुज़रो।

मैं पछताने लगी। बात यहां तक बढ़ जाएगी, मुझे यह ख़याल न था। मगर मैं भी क्रोध में थी। उठकर खड़ी होगई और बोली—तो चली जाऊं?

अब वह समझे, यह डर गई। डरते को हर कोई डराता है। वह और भी तेज़ होकर बोले—और कितनी बार कहूं? अब जाती क्यों नहीं? मेरी तरफ़ से खुली इजाज़त है। चाहे प्यार बेचो, चाहे शरीर बेचो, चाहे आत्मा बेचो।

मैं दरवाज़े की तरफ़ चली मगर दिल धड़क रहा था। मैं समझती थी वह अब भी आकर मेरा रास्ता रोक लेंगे। काश, वह आकर मुझे बांधकर अंदर डाल देते। मगर वह मिट्टी की मूर्ति के समान बैठे रह। मैं बाहर आ गई और उन्होंने मुझे न रोका। मगर मुझे अब भी आशा थी कि आकर मना लेंगे। आशा अंतिम समय तक साथ नहीं छोड़ती। एकाएक उन्होंने खिड़की से सिर बाहर निकालकर कहा—मगर इतना सोच लो, जाओगी कहां?

अगर वह अब भी आकर मेरा हाथ पकड़ लेते तो मेरा क्रोध एक क्षण में पानी पानी हो जाता। मगर उन्होंने यह शब्द दूर से कहे, पास आ कर न कहे। मेरा क्रोध दूना हो गया। चिल्लाकर बोली—जिधर सींग समाएंगे, चली जाऊंगी। दुनिया बहुत बड़ी है और मेरे पांव चल सकते हैं।

यह कहकर मैंने उनके चेहरे की तरफ़ देखा। रात का समय था। उन्होंने रोशनी बुझा दी। चारों तरफ़ अँधेरा हो गया। मैं सोचने लगी, क्या करूंगी। स्त्री कितनी असहाय, कैसी अबला है, यह आज मालूम हुआ। बहुत देर वहीं खड़ी सोचती रही, मगर जीवन समस्या हल न हुई।

दूसरे दिन मैं बाज़ार में थी। उसी बाज़ार में जहां सौंदर्य बिकता है, जहां धर्म रोता है, जहां पाप हंसता है। सारे शहर में शोर मच गया। लोग आते थे, ऊपर आने का साहस तो न करते थे पर आकर मेरी तरफ़ देख कर चले जाते थे। शाम को मालूम हुआ उन्होंने आत्महत्या कर ली है। वह रेल गाड़ी के नीचे कट मरे थे। उनकी लाश कुचल गई थी, पहचानना भी कठिन था, मगर अंगूठी से पहचाने गए। मैं रूठकर घर से चली थी। क्या पता था वह संसार से ही रूठ जाएंगे। आत्म ग्लानी ने जोश मारा। मै पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

[४]

बारह साल बीत गए। मैं पाप के अँधेरे गढ़े में उतरती गई। अब पहले दिनों का कभी ख़याल भी न आता था। वही फूल जो

मन्दिर में देवता पर चढ़ाया जाता है कभी कभी नालियों में तैरते भी देखा गया है।

प्रातःकाल था। लोग जमना-स्नान करने जा रहे थे। मैं चारपाई पर लेटी छत की तरफ़ देख रही थी। इतने में मेरी बुड्ढी दासी ने आकर कहा—कुछ लोग आए हैं, बुला लूं?

मैं वेश्या थी। मेरा पेशा पाप था। मगर इस समय लोगों का आना सुनकर मेरी देह में आग लग गई। मैंने कहा—कहो, इस समय माफ़ करें।

दासी—मैं पहले ही कह चुकी हूं। नहीं मानते। कहते हैं जरूर मिलेंगे, बहुत ज़रूरी काम है।

मैं—धक्के देकर निकाल दो पाजियोंको।

दासी—यह कैसे हो सकता है बेटी! हमारी रोज़ी इन्हीं लोगों से है।

मुझे होश आ गया। थोड़ी देर सोचकर बोली—अच्छा, बुला लाओ। देखते देखते वह लोग आ गए। मैं दंग रह गई। यह वह लोग थे जिनका नाम सुनकर मथुरानिवासी सिर झुका देते थे, जिनपर देशको घमंड था। आज वह एक वेश्या के घर में आए थे।

मैंने कहा—आइए कैसे आए?

एक पंडित ने कहा—इस समय धर्म संकट में है, तुम सहायता करो तो बेड़ा पार हो जाए।

मुझे आश्चर्य हुआ—मैं?

पंडित बोला–हां, तुम वह कर सकती, हो जो हम में से कोई भी नहीं कर सकता।

मैं– फ़रमाइए! क्या हुक्म है? पर मैं वेश्या हूं।

पंडित– अरे वेश्या हो तो क्या, हिन्दू तो हो।

मैं– हां, यह तो ठीक है।

पंडित– यहां एक धूर्त साधू आया है। वह गंगा, जमना और ब्राह्मणों की निंदा करता है। हमनें शास्त्रार्थ किया पर हार गए।

मैं– (हंसकर) तो अब मैं क्या कर सकती हूं। मैं तो शास्त्रार्थ नहीं कर सकती।

पंडित– पर नयनों के तीर तो चला सकती हो।

मैं– मगर जब वह यहां आए, तब ना।

दूसरा पंडित–हम केवल यह चाहते हैं कि आज तुम शतरंजी बाग़ में चली जाओ और उसे मोहने का यत्न करो। अगर कुछ न बने, शोर मचा दो। बाक़ी हम समझ लेंगे।

मैं उनका मतलब समझ गई। वह साधू को बदनाम करना चाहते थे। मैं वेश्या थी मगर साधुओं में मुझे भी श्रद्धा थी। कहीं शाप न दे दें। कहीं कुछ कर न बैठें। कौन जाने कौन साधू सच्चा परमहंस निकल आए। मैंने सिर हिलाकर जवाब दिया– माफ़ कीजिए। मुझ से यह काम न होगा। किसी और परी को पकड़िए।

मगर सोने के जड़ाऊ कड़ों ने मुझे मना लिया। मैं तैयार हो गई।

[९]

थोड़ी देर बाद मैंने जोगिया रंग की साढ़ी पहनी, गहनों से शरीर सजाया, बालों में तेल डाला और सजसजाकर शीशे के सामने गई तो मुझे विश्वास हो गया कि यह जोबन और सौंदर्य की छटा बड़े से बड़े साधु का भी मन मोह लेगी। झूमती झामती शतरंजी-बाग़ में दाखिल हुई। उस समय मेरे मन की अजीब हालत थी। देखा एक सुन्दर साधु आसन जमाए बैठा है और संध्या कर रहा है। मैंने पवित्रता और पाप के छोटे जीवन में खूबसूरत से खूबसूरत आदमी देखे हैं. मगर ऐसा सुन्दर, ऐसा सुडौल ऐसा गठा हुआ बदन मैंने दूसरी बार देखा है। उसके चेहरे पर मुसकान थी, मस्तक पर तेज था। मुझे पहली बार पुरुष-सौन्दर्य के जादू का अनुभव हुआ। साधुका मन जीतने आई थी, अपना मन हार बैठी।

मैं साधु की तरफ़ प्यासे नयनों से देख ही रही थी, कि उसनें आंखें खोल दीं। अंधेरे में बिजली चमक गई। शिकार करने आई थी, आप शिकार हो गई। दिल धड़कने लगा, पांव थम गए। ज़बान में बोलने की ज़रा भी हिम्मत न थी। दिल सोचता था, क्या इसपर असर हो जायगा? कहते हैं, सौन्दर्य के जादू से जानवर भी बस में हो जाते हैं। क्या यह जानवरों से भी कठोर हृदय है? सांप मीठी वीणा सुनता है तो बेसुध हो जाता है। खूबसूरत स्त्री के रूप के सामने कौन ठहर सकता है? उसके नयनों के तीर खाकर भी कौन अपने आपको बस में रख सकता है? मगर साधुने मेरी तरफ़ देखा भी नहीं। उसने ज़मीन की तरफ़ देखते हुए बड़े कोमल और मीठे स्वर में पूछा—देवी! तू यहां कैसे आई है?

कैसे शब्द थे, जिन में निस्वार्थ पवित्र, विषयवासना से रहित प्रेम की माधुरी भरी थी। जैसे किसी पिताने अपनी बेटी को पुकारा हो, या जैसे किसी पुत्र ने अपनी मां को बुलाया हो। मुझे ख्याल था कि दुनिया चोरों और डाकुओं पर विश्वास कर सकती है, उनका आदर कर सकती है, मगर मेरा आदर नहीं कर सकती। मगर इस साधु के एक शब्द—देवी—ने मरा हुआ धर्म जिला दिया। मेरे मन में हलचल मच गई। खयाल आया ऐसे पवित्र आदमी को कौन बदनाम कर सकता है? संसार का सबसे बड़ा पापी भी नहीं। इसने मुझे देवी कहा है, मैं देवी बनकर दिखाऊंगी। मैं यह सोच ही रही थी कि साधु ने फिर उसी स्वर में कहा—देवी, तू यहा कैसे आई है?

मैंने सोने के कड़े उतार कर साधु के पांव में रख दिए और रोते हुए बोली—महाराज! आप पारस है मैं लोहा हूं। आप के पांव से छूकर मैं सोना बन गई। यही जगह है जहां मेरे पतन का प्रारम्भ हुआ था; यही जगह है जहां मुझे आज उद्धार की शिक्षा प्राप्त हुई है। आज बारह साल के बाद आपने मेरे हृदय के तारों को छेड़ दिया है। अब मैं पहली पापात्मा, राक्षसी स्त्री नहीं, साधारण सीधी सादी औरत हूं। आपने मेरी पाप पूर्ण भावनाओंको दबा दिया है, मुझे कंकरों में भटकते हुए सोनेका डला मिल गया है। मैं धन कमाने आई, धर्म कमाकर ले चली। आज मेरी अंधी आंखों को ज्ञानका प्रकाश मिल गया है। मगर महाराज! क्षमा कीजिए, मैं आपको बदनाम करने आई थी।

मेरी आंखों से आंसू बह रहे थे, मगर साधु शांत और गंभीर था। उसने कहा—परमात्मा करे, तू नेक बने और नेक बनकर रहे।

[६]

एकाएक मुझे मालूम हुआ, मैं इस आवाज़ को पहचानती हूं। मैंने धड़कते हुए दिल से आंखें ऊपर उठाईं और उनको बड़े ध्यान से देखने लगी। कुछ देर असमंजस रहा, और तब मैं आनन्द और आश्चर्य से दूसरी बार उछलकर उनके पांवपर गिर पड़ी—यह वही थे।

मैं रोने लगी, मगर इस रोने में अजीब लुत्फ़ था। यह वह रोना था जिसपर हज़ारों खुशियां कुरबान की जा सकती हैं। यह वह आंसू थे, जो साजन के पॉव धोने के लिए आंखों से बाहर आए थे। उन्होंने अबतक मुझे न पहचाना था, अब वह भी पहचान गए और ठिठक कर खड़े हो गए। थोड़ी देर बाद बोले—बृंदा!

स्वर में क्रोध था। मैंने पांव से सिर उठाया और जवाब दिया—आपने मुझे पहचान लिया?

वह—तुमने मुझे कहीं मुंह दिखाने लायक न रक्खा।

अब मैं सहन न कर सकी। खड़ी होकर बोली—तुम पुरुष हो। समझते हो पुरुषों में ग़ैरत है, मगर स्त्रियों को भगवान ने इस वस्तु से ख़ाली रखा है। तुम जो चाहो करो, तुम्हें कोई दो शब्द भी न कहे। मगर स्त्री किसी की तरफ़ देख भी जाय, तो तुम गरदन उतार लो। ज़रा न्याय की आंख से देखो, हम दोनों ने एक ही पाप किया, मगर इसका उत्तरदाता कौन है—मैं या तुम! पहले तुम्हारी आंखों पर विषयवासना की पट्टी बंधी थी मगर अब तो तुम साधु हो। तुमने ज्ञान-ध्यान सीखा है, तुमने शास्त्र पढ़े हैं। बताओ, मुझे किसने गिराया।

यह कहकर मैं चुप हो गई, मगर मेरी आंखों से आगकी चिनगारियां निकल रही थीं। उन्होंने थोड़ी देर बाद ठंडी सांस भरी,

और बोले—तुम सच कहती हो। भूल तुम्हारी नहीं, मेरी ही थी। यही बाग़ है, जहा मैंने अपना धर्म लुटाया था; यहीं तुम्हारे पतन का शुरू हुआ था। यहीं अपने मन का मैल दूर करो और मुझसे प्रतिज्ञा करो कि अब तुम नेक बन कर रहेगी। मैं तुमसे यही भिक्षा मागता हूं।

मेरी आंखों में भी आंसू थे, उनकी आंखों में भी आंसू थे और वह लोग जो उन्हें और मुझे बदनाम करने आए थे, दूर खड़े यह दृश्य देखते थे और हैरान होते थे।

मैंने पूछा—मगर तुम तो........

वह मुस्कराकर बोले—मैं जीता हूं यह धोखा नहीं है।

मैं—लेकिन वह गाड़ी के नीचे कुचली हुई लाश!

वह—किसी और की थी। मैंने सुअवसर समझा और अपनी अंगूठी उसकी उंगली में पहनाकर भाग गया। लोग धोखा खा गए।

मैं—तो मुझे अब क्या हुक्म है?

वह—यह पाप का पेशा छोड़ो और चार दिन भगवान का भजन करो।

मैंने दूसरे दिन अपना माल-असबाब गरीबों में बांट दिया और सन्यासिनी बनकर परमात्मा का जाप करने लगी।

कई वर्ष बीत गए हैं, मगर पाप-स्मृति अभी तक जीती है। हां, जब कभी उनके दर्शन हो जाते हैं तो हृदय को शांति सी मिल जाती है। मगर वह मेरे पास ज्यादा ठहरते नहीं। थोड़ी देर बैठते हैं और सदुपदेश देकर चले जाते हैं।

पहले वह मेरे स्वामी थे, अब मेरे गुरू हैं।

मनुष्य की कसौटी

[१]

स्यालकोट के मशहूर वकील पं० प्रभुदत्तजी आधे आर्यसमाजी थे, और आधे सनातन-धर्मी। उनकी मित्र-मंडली में भी दोनों ख़याल के आदमी थे। उनको मूर्ति-पूजा पर पूरी श्रद्धा थी। कहते, इससे मन की चंचलता दूर हो जाती है; हम पत्थर को नहीं, परमात्मा को पूजते हैं। पंडितजी अवतारवादी भी थे। तीर्थ-यात्रा का तो उन्हें इतना ख़याल था कि हर साल कहीं-न-कहीं ज़रूर हो आते। राम और कृष्ण का पवित्र नाम सुनते, तो उनका चेहरा खिल उठता था, जैसे सूरज निकलने पर सूरजमुखी फूल खिल उठता है। प्रातःकाल उठकर गीता का पाठ किए वग़ैरे भोजन न करते। मगर इसके साथ ही वह विधवा-विवाह के भी पूरे पक्षपाती और अछूतों के भी मित्र थे। वह इस पहलू में हिंदुओं को गुनहगार समझते और आर्य-समाज के सुधार और प्रचार की बहुत प्रशंसा करते थे। स्त्री-शिक्षा के संबंध में

आपका यह मत था कि इसके बिना हिंदुओं की गति ही नहीं है। मगर उनकी अधिक श्रद्धा अछूतोद्धार में थी। कचहरी से आते, तो साइकिल लेकर साँदले चले जाते। यह गाँव स्यालकोट से कोई चार मील की दूरी पर है। यहाँ ब्राह्मण-क्षत्रिय नहीं रहते; मेघ बसते हैं। प्रभुदत्त को देखकर उनके मुख-मंडल पर रौनक आ जाती थी। वहाँ का बच्चा-बच्चा उनसे परिचित था, जैसे वह वहीं के निवासी हों। प्रेम में घृणा कहाँ? जहां कहीं बैठते, उनसे घर-बाहर की बातें करते; कहीं उपदेश करते, कहीं उनके झगड़े मिटाते, कहीं मुक़दमे सुनते। उन गँवारों की सीधी-सादी बातें सुनकर पंडितजी को आत्मिक प्रसन्नता होती थी। सोचते, ये लोग कैसे सच्चे हैं, कैसे पवित्र। इनको दुनिया के छल-कपट नहीं आते न बात-बात में ये झूठ बोलते हैं। हार्दिक भावों को ये छिपाना नहीं जानते। साफ़ और खरी बात मुँह पर कह देते हैं। कोई प्रसन्न हो चाहे अप्रसन्न इन्हें परवा नहीं। ये गाँव के आदमी थे, इन्हें शहर का पानी न लगा था, न इन्होंने झूठी दुनियादारी की झूठी नीति सीखी थी। पंडित प्रभुदत्त इनके इन सद्‌गुणों पर लट्टू थे। प्रायः अपने इष्ट-मित्रों से कहा करते, ये सच्चे साधु हैं; इनके दिलों में खोट नहीं है। धन-दौलत से ग़रीब हैं, तो क्या; परंतु इनके पास प्रेम और पवित्रता के धन का अभाव नहीं। मुझे तो हिंदुओं की बुद्धि पर रोना आता है, जो इन्हें दूर हटाते हैं। खरे सोने को पीतल समझना दुर्भाग्य नहीं, तो और क्या है?

इन मेघों में एक लड़का विसाखी था, बहुत नेक और खूबसूरत, जैसे गऊ का जवान बछड़ा हो। पंद्रह-सोलह साल की उमर होगी, उर्दू-हिंदी पढ़ सकता था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि अवसर मिले,

तो अंगरेज़ी के चार अक्षर भी पढ़ले। मगर उसके माता-पिता ग़रीब थे; उनमें यह शक्ति न थी। पंडितजी ने सुना, तो उसके लिए महीना बांध दिया। मगर अभी एक ही दो महीने गुज़रे थे कि गांव में प्लेग फूट पड़ा। बिसाखी के मा-बाप दोनों चल बसे। अब बिसाखी इस असार संसार में अकेला रह गया। क्या करे, क्या न करे? उसकी सहायता करनेवाला कोई न था, न घर में रुपया-पैसा था। हारकर पंडितजी के पास जाकर रोने लगा। पंडितजी नरम दिल के आदमी थे। उनसे ग़रीब लड़के का रोना न देखा गया। बोले—तेरे माबाप मर गए, तो क्या हुआ? हम तो जीते हैं, तुझे भूखों न मरने देंगे।

दूसरे दिन से बिसाखी उन्हीं के यहां रहने लगा।

[२]

पंडित प्रभुदत्त की स्त्री का नाम विद्यावती था। वह पंडितजी पर प्राण देती थी। उन्हें दो-चार घंटे भी न देखती, तो पागल हो जाती। मगर इसे मूर्खता कहो, या बाल्यकाल के संस्कार, उसे पति की अछूतो-द्धार की यह बातें पसंद न थीं। प्रायः सोचती, यह करते क्या हैं? क्या हमारे बाप-दादा सारे मूर्ख ही थे, जो इनको छूना भी पाप समझते थे? कलजुग का ज़माना है, लोग आर्यसमाजी हो गए हैं। पहले ऐसा अँधेर कभी न होता था। अब तो धरम-करम का दुनिया को ख़याल भी नहीं रहा। मेघ-चमार भी कहते हैं, हम आर्य हैं। कहा करें, यहां उनकी सुनता ही कौन है? एक दिन पंडितजी ने कहा—विद्या! तुम यह बताओ, वे हिंदू क्यों नहीं? उनके सिर पर मुझसे लंबी चोटी है; उनके दिल

में राम-कृष्ण के लिये श्रद्धा है। वे रामायण-महाभारत पढ़ते हैं। उनके ब्याह पुरोहित कराते हैं। फिर तुम उनसे घृणा क्यों करती हो?

विद्याने जवाब दिया--अब इन बातों का क्या जवाब दूँ? मगर इतना जानती हूँ कि वे हिंदू नहीं हो सकते। तुम मेरी जीभ पकड़ सकते हो, पर मन नहीं पकड़ सकते। और, क्या वेद-शास्त्र सब झूटे हैं?

पंडितजी हँसकर बोले—तो पंडितानीजी! वेद-शास्त्र क्या कहते हैं?

विद्या--जाओ, तुम तो मज़ाक करते हो।

प्रभुदत्त--नहीं विद्या, मैं मजाक नहीं करता! ज़रा समझ-सोच-कर बताओ। बिसाखी में क्या कीड़े पडे हैं, जो उसे हम घर में न घुसने दें? कितना पाक-साफ है वह, कितना नितनेम का खयाल रखनेवाला! स्नान किए बिना खाना नहीं खाता। अब अपने मुहल्ले में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फिर आओ, और तब बताओ कि इसके मुक़ाबले में कौन-सा ब्राह्मण खत्री है, जिसे पवित्रता का इतना ध्यान हो? मेरा ख़याल है, एक भी नहीं।

विद्या—मगर उन्होंने अपना धर्म तो बचा रक्खा है। तुम्हारी तरह किरानी तो नहीं हो गए?

प्रभुदत्त—बस, बस, यही तो तुम्हारी मूर्खता है। तुम धर्म किसे समझती हो?

विद्या—धर्म वही, जो अपना धर्म हो।

प्रभुदत्त--मगर धर्म के लक्षण क्या हैं? यह बताओ पहले।

विद्या—(हाथ जोड़कर) तुम मुझे छिमा करो, तुमसे बहस

कौन करे? चलो भोजन कर लो, कचहरी का समय हो गया है। फिर कहोगे, देर हो गई।

प्रभुदत्त—बिसाखी खा चुका या नहीं?

विद्या—अभी नहीं। तुम्हारे बाद खायगा।

प्रभुदत्त को कुछ संदेह हुआ। विद्या की आंखों से आंखें मिला-कर बोले—तुम उससे नाराज़ तो नहीं रहती हो? देखना, अनाथ बालक है। उसका दिल न दुखाना, पाप लगेगा।

विद्या को तीर-सा चुभ गया। उसने क्रोध-पूर्ण स्वर से पूछा—यह बिसाखी मेघ का लड़का है, या तुम्हारा देवता?

प्रभुदत्त—देवता से भी बढ़कर।

विद्या—तुम्हारे लिए होगा। मेरे लिए तो आम अछूत है।

प्रभु०—मगर आज से अछूत न रहेगा।

विद्या—कैसे न रहेगा।?

प्रभु०—अभी देख लोगी। आज से वह मेरे साथ चौके में बैठकर भोजन करेगा।

[२]

विद्या चौंक पड़ी। उसे विश्वास न आता था कि पंडितजी का सच-मुच यही मतलब है। वह समझती थी, मुझे बनाते हैं। अब यहाँ तक थोड़े बढ़ जायँगे? इतने में पंडितजी ने ज़ोर से पुकारा—बिसाखी!

बिसाखी अपने कमरे में बैठा किताबें सँभाल रहा था। आवाज़ सुनते ही बाहर आ गया।

प्रभु०—चलो, खाना खा लें।

बिसाखी ने इसका मतलब नहीं समझा। सोचने लगा, आज क्या है। वह कभी पंडितजी की तरफ़ देखता कभी विद्या की तरफ़। मगर कुछ समझतां न था।

प्रभु०—तुमने सुना या नहीं! चलो मेरे साथ बैठो।

बिसाखी—पहले आप खा लें। अभी स्कूल जाने में बहुत देर है।

प्रभु०—स्कूल जब जी चाहे, जाना; खाना पहले खा लो। चलो।

बिसाखी समझ गया, पंठितजी अब न मानेंगे। वह यह भी समझ गया कि आज कुछ-न-कुछ बखेडा खड़ा हो जायगा। मगर वह बोल न सकता था। ग़रीब की हर तरह मौत है। बिसाखी धीरे-धीरे रसोई घर की तरफ़ बढ़ा। सहसा विद्या ने उसका रास्ता रोक लिया, और कड़ककर बोली—ख़बरदार! जो पाँव आगे बढ़ाया, तो पांव ही तोड़ दूँगी। यह ब्राह्मण का घर है, चमार का नहीं।

बिसाखी की आंखें सजल हो आईं। उसने बेबसी से पंडितजी की तरफ़ देखा, और, तब सिर झुकाकर बोला—पंडितजी, आपकी कृपा मुझ पर पहले ही कम नहीं। आप माताजी को नाराज़ न करें। इनको नाराज़ करके मेरा भला न होगा।

यह कहते-कहते बिसाखी की आंखों से आंसू बहने लगे, जैसे पहाड़ी नाले में एकाएक बाढ आ जाए। उधर विद्यावती रो रही थी कि कैसे तोता-चश्म हैं। पराए बेटे का ख़याल करते हैं, मेरी परवा नहीं

करते ! क्या मैं ऐसी तुच्छ हो गई हूँ कि बिसाखी के सामने मुझे इस तरह डांटें ? स्त्री आख़िर स्त्री है, इतना भी नहीं सोचते।

मगर पंडितजी को इन दोनों की परवा न थी। आसपास नदियां फुंकारे मारती थीं, बीच में पहाड़ खड़ा था, और इस ढंग से कि उस पर पानी के इस आक्रमण का ज़रा भी असर न होता था। थोड़ी देर बाद उन्होंने आग भरी आंखों से विद्या की तरफ़ देखा; मगर नम्र शब्दों में कहा—विद्या, मुझे तंग न करो ! यह बिसाखी का सवाल नहीं, मेरे सिद्धांत का सवाल है। मैं सच कहता हूँ, इससे मेरा दिल टूट जायगा।

यह कहते-कहते उनकी आंखों में भी आँसू आ गए। क्रोध पानी होकर बहने लगा, जैसे लोहा आग में पड़कर पहले गरम होता है, फिर पिघल जाता है। उस समय उसमें कैसी जलन होती है, कैसी तरलता ! वही दशा इन आँसुओं की थी। यह पानी न था, पिघली हुई आग थी। यह मीठे जल का सोता न था, लावे की नदी थी। इसके सामने ठहरने की शक्ति किसमें है ? कम-से-कम स्त्री के प्रेम में तो नहीं। विद्या ने पति की बातों को सोचा, और तब सामने से हट गई। प्रभुदत्त बिसाखी को लिए हुए रसोई-घर में चले गए, और बैठकर खाने लगे। नौकर पकाता था, पंडितजी और बिसाखी खाते थे, और विद्या आहें भरती थी।

इतने में ब्राह्मणी रोटी लेने आई। मगर बिसाखी को रसोई में बैठे देखकर चौंक पड़ी, और इस तरह कतराकर निकल गई, जैसे वहां आदमी नहीं, प्लेग के चूहे थे। विद्या ने पंडितजी की आंखों से अपनी आंखें मिलाई, मानो कहा—अभी तो पहला ही दिन है, आगे-आगे देखना। मगर पंडितजी ने ब्राह्मणी के इस खुल्लमखुल्ला

अपमान पर ज़रा भी ध्यान न दिया, और उठकर कचहरी चले गए। बिसाखी कुछ देर वहीं बैठा रहा। इसके बाद सिर झुकाए हुए धीरे-धीरे स्कूल चला गया। मगर विद्या उसी तरह चुपचाप बैठी रही, जैसे वह जीती-जागती स्त्री न थी, मिट्टी की मूर्ति थी। आज वह कितनी उदास थी, कैसी परेशान! आज उसकी आन मर गई थी। आज उसकी मर्यादा टूट गई थी। आज उसके पति ने उसकी परवा न की थी।

दोपहर होते-होते यह घटना सारे मुहल्ले की ज़बान पर थी। स्त्रियों को बात मिल गई। कहती थीं--घोर कलजुग आ गया, ऐसा कभी न होता था; ज़रा ख़याल करो, मेघ ब्राह्मण की रसोई में जा बैठा और ब्राह्मण उसे खिलाता रहा! एक और स्त्री ने कहा—अब दुनिया उलट जायगी, पृथ्वी से पाप का यह भार न उठाया जायगा। एक बूढी स्त्री ने माला फेरते-फेरते कहा—सासतर में यह बखान है कि जब ऐसे ऐसे पाप होंगे, तो निसकलंक उतार आवेगा। सो अब उसके आने में देर नहीं। सब लोग बरन-संकर होते जाते हैं। अब न बामसा बामण हैं, न खत्री खत्री है। धरम-करम सब मिट्टीमें मिल गया।

ये बातें विद्या ने सुनीं, तो उसके दिल में तीर-सा चुभ गया। मगर उसे पति पर गुस्सा न था, गुस्सा बिसाखी पर था। गुस्सा भी पानी के समान नीचे की तरफ़ बहता है। विद्या दिल में सोचती थी, यह कम्बख्त कहां से आ मरा! अब मुहल्ले मे उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। अगर उसका बस चलता, तो बिसाखी की गर्दन मरोड़ देती। पहले स्त्री-पुरुष, दोनों कितने प्रेम से रहते थे। प्यार-मुहब्बत की वह चितवन आज वियोग के युग में कहीं दिखाई न देती थी, जिस तरह वसंत-ऋतु के मनोहर दृश्य पतझड के दिनों में नज़र नहीं आते। दोनों एक ही मकान में रहते थे, एक ही छत-तले सोते थे; मगर

ठीक उसी तरह, जैसे दो परदेसी धर्मशाला में आ ठहरे हों। आँखें वही थीं, लेकिन निगाहें वे न थीं। पुराना समय कितना दूर, कितना परे चला गया था!

[४]

एक महीना बीत गया। मुहल्ले के लोग पंडितजी से इस तरह मिलते थे, जैसे वह हिंदू न थे, भंगी-चमार थे। कोई उनके घर की चीज़ न लेता था, न उनसे हँसकर मिलता था। वह मुहल्ले के अंदर रहते हुए भी मुहल्ले से बाहर रहते थे। और, स्त्रियाँ तो विद्या की परछाईं से भी भागती थीं। पंडितजी दिन-भर घर के बाहर रहते थे। उनको इस सुलूक की परवा न थी। मगर विद्या की जान पर आ बनी। वह पंडितजी की ग़ैरहाज़िरी में प्रायः रोती रहती, और भगवान् से प्रार्थना किया करती कि यह संकट कटे। लेकिन भगवान् सुनते न थे।

रात का समय था, आसमान पर तारों का चमन खिला हुआ था। पंडितजी ने भोजन किया, और खाट पर लेट गए। विद्या आज बहुत उदास थी। पंडितजी को उसकी दशा पर दया आ गई। प्यार से बोले— विद्या, आज तुम्हारा मन उदास है क्या?

विद्या की आँखों में आँसू आ गए। यह तो वही आवाज़ है, वही शब्द, वही प्यार। उसे बिसरे हुए दिन याद आ गए, बीता समय आँखों-तले फिर गया। उसकी प्यार की सूखी हुई बेल इस तरह हरी हो गई, जिस तरह वर्षा के छींटों से फूल की कुम्हलाई हुई टहनी हरी हो जाती है। उसने अपने को सँभालकर जवाब दिया— नहीं

जवाब मामूली था; मगर इससे पंडित प्रभुदत्त का हृदय हिल गया। हमारा सोया हुआ प्यार प्रायः मामूली बात से जाग उठता है। पंडितजी लेटे थे, यह सुनकर उठ बैठे, और विद्या की तरफ़ प्यार-भरी दृष्टि से देखकर बोले—विद्या, क्या यह लडाई कभी समाप्त न होगी? आओ, अब हम, तुम सुलह कर लें। लड़ाई और लाल मिर्च, दोनों में स्वाद है; मगर उसी समय तक, जब तक इनकी मात्रा अधिक न हो। तुम स्त्री हो; स्त्रियां लाल मिर्च बहुत खाती हैं। मगर मेरा तो मुँह जलने लगा। परमात्मा के लिए आज कोई मीठी चीज़ खिलाओ, तो मन शांत हो।

प्यार की ये रंगीली और रसीली बातें सुनकर विद्यावती के हृदय-सागर में तरंगें उठने लगीं। मगर वह नारी थी, और नारी-हृदय आसानी से विवश नहीं होता। उसने पति की तरफ़ देखा, और होंठ चबाकर बोली—मैं तो तुमसे कभी नहीं लड़ी। और, स्त्री लड़ ही क्या सकती है? पति बुला ले, तो रानी; न बुलावे, तो दासी। मालिक-नौकर की लड़ाई कैसी?

प्रभु०—बस, यही बातें तो लडाई की हैं। साफ़ मालूम होता है कि तुम ख़फ़ा हो। नहीं तो ऐसा रूखासूखा जवाब कभी न देतीं! कितना अंधेर है! पति-परमेश्वर सुलह की विनती करे, और स्त्री मुँह फुलाए खडी रहे! मगर क्यों न हो, कलजुग का ज़माना है।

विद्या ने पति-परमेश्वर का शब्द सुना, तो हँस पड़ी। यह हँसी न थी, सुलह की दरख्वास्त की मंजूरी थी। प्रभुदत्त अपने को रोक न सके। उन्होंने उठकर विद्यावती को गले से लगा लिया, और चारपाई पर अपने पास बिठाकर बोले—रानी, तुम अपना मन साफ़ कर लो।

आख़िर कब तक रूठी रहोगी ? जो होना था, वह तो हो चुका। फिर अब घर की खुशी ख़राब करने से क्या बनेगा ?

विद्या ने अपना सिर पति के कंधे पर रख दिया, और सिसकियाँ भरभर कर बोली—तुम समझोगे झूट बोलती है। पर सच बात तो यह है कि मुझे दुनिया नहीं जीने देती। स्त्रियाँ ताने मारती हैं, तो कलेजा छुलनी हो जाता है। कहती हैं, ये दोनों साहब मेम बन गए हैं। तुम कचहरी चले जाते हो, मैं बैठी अपने भाग को रोया करती हूँ। कोई हाथ का छुआ पानी भी तो नहीं पीता।

प्रभुदत्त—बड़ी अच्छी बात है। हम किसी के यहाँ माँगने नहीं जाते। कोई बोले, बुला लो न बोले न बुलाओ। हमें किसी से कोई मतलब नहीं। तुम हैरान क्यों होती हो ? मैं तो ऐसी बातें हँसी में उड़ा देता हूँ।

विद्या—जी चाहता है, कुएँ में कूद पड़ूं! तुम्हें शायद मालूम न होगा, रसोइए ने जवाब दे दिया है। कहता है, मेरी बिरादरी हुक्का-पानी बंद कर देगी, तो मैं क्या. करूँगा। ग़रीब आदमी हूँ, मुफ्त में मारा जाऊगा।

प्रभु०—अरे! ज़रा उसे बुलाओ तो। मैंने उसके साथ जो सलूक किया है, वह मामूली नहीं। देखूँ, मेरे सामने आँखें कैसे उठाता है।

विद्या०—बुलाकर क्या करोगे ? वह कभी न रहेगा। मैं बहुत समझा चुकी।

प्रभु०—तो जाने दो; और नौकर आ जाएगा। शहर में नौकरों की कमी नहीं।

विद्या०---पानी भरनेवाला भी कल से नहीं आएगा। मुहल्ले के लोगों ने डरा दिया है। ग़रीब आदमी है, क्या करे। कहते हैं, या पंडितजी का पानी भरो, या हमारा।

प्रभु०—तो मालूम होता है, हमें भूखों-प्यासों मारने पर तुल गए हैं?

विद्या०---मेरा तो लहू सूखा जाता है। भगवान् जाने, अब क्या होगा?

प्रभु०—नालिश न कर दूँ। दो दिन में आटे दाल का भाव मालूम हो जायगा। ये भी क्या कहेंगे कि किसी वकील को तंग किया था।

विद्या०—(सिर हिलाकर) इससे विरोध बढ़ेगा, कम न होगा।

प्रभु०—चलकर समझाऊं, शायद समझ जायँ।

विद्या०—समझेंगे तो क्या! पर हाँ, खिल्ली ज़रूर उडावेंगे।

प्रभु०—तो फिर क्या करूँ विद्या, मुझे तो कोई रास्ता नज़र नहीं आता।

विद्या०—रास्ता तो है, पर उसकी बात मुंह पर लाने का साहस नहीं होता। गया हुआ क्रोध फिर लौट आएगा।

यह कहते कहते विद्या रोने लगी। प्रभुदत्त क्रोध की आग देख सकते थे; मगर प्रेम का पानी न देख सके। उनका दिल रुँध गया। ठंडी साँस भरकर बोले—बहुत बुरे फँसे।

[९]

ठीक इसी समय बाहर से विसाखी ने पुकारकर कहा—पंडितजी!

पंडितजी तिलमलाकर खड़े हो गए। यह आवाज़ न थी, ज़हर में बुझी हुई कटार थी। सोचने लगे, यह काँटे इसी के बोए हुए हैं। कैसी चैन से कटती थी। आज वे दिन सुपना हो गए। कड़ककर बोले—क्या है बिसाखी?

बिसाखी धीरे-धीरे अंदर आया, और हाथ जोड़कर बोला—पंडितजी, मेरे कारण आपको बहुत दुःख हुआ। पर अब तो नहीं सहा जाता। आज्ञा दीजिए, साँदले चला जाऊँ। यहाँ तो सारा शहर ही आपके विरुद्ध हो गया है।

पंडितजी ने बिसाखी को इस तरह देखा, जैसे खा ही जाएँगे। और क्रोध से बोले—अगर जाना ही था, तो आए क्यों थे?

बिसाखी ने कोई जवाब न दिया, और गर्दन झुका ली।

प्रभु०—मैं लोगों की धाँधलियों से नहीं डरता। समझते होंगे, डरा लेंगे। पर यहाँ भी ब्राह्मण का तेज है। एक बार आँखें खोल दूँ गा।

बिसाखी ने आँसुओं से भरी हुई आँखें ऊपर उठाईं, और कहा—सारे मुहल्ले का मुक़ाबला करना बड़ा मुश्किल है।

प्रभु०—(घूरकर) देखो जी! तुम्हें मेरा कहना मानना होगा।

बिसाखी—मैं आपका गुलाम हूँ। आपकी आज्ञा हो, तो देह का मांस उतार दूँ। मगर.......

प्रभु०—बिसाखी! तुम मेरा दिल चीर कर देखो। लोग क्या कहेंगे?

बिसाखी—मैं आप जाता हूँ। आप नहीं निकालते।

प्रभु०—अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मेरे पास न रहो, तो मैं क्या कर सकता हूँ।

बिसाखी—मेरी इच्छा तो यह है कि सदा आपके चरणों से लिपटा रहूँ। आपके प्यार ने मेरा मन मोह लिया है। मुझे जो सुख यहां मिला है, वह अपने घर में भी न था। मगर.......

बिसाखी ने अपने कथन को अधूरा ही छोड़ दिया, और पंडितजी के पांव में गिर पड़ा। पंडितजी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। उन्हें कुछ सूझता न था, न ज़बान से कोई शब्द निकलता था। वह जो चाहते थे, वह मुँह से कह न सकते थे। एक दिन पहले भी बिसाखी और विद्या, दोनों रोते थे। उस समय पंडितजी का मन ज़रा भी विचलित न हुआ था। मगर आज उनके दिल पर दोनों का असर हो गया। वह दृढ़ता, वह साहस कहीं नज़र न आता था। पंडितजी ने बिसाखी को ज़मीन से उठाया, और कहा—तो तुम घबराते क्यों हो? कल देखा जायगा।

मगर दूसरे दिन बिसाखी का पता न था। पंडितजी समझ गए, वह सांदले चला गया। सोचने लगे, कितना बुद्धिमान् है, कैसा सज्जन! उसे मेरी चिंता है, अपनी नहीं। अपने भविष्य का ख़याल भी उसे नहीं रोक सका। कोई दूसरा होता, तो चुपचाप पड़ा रहता, और मुझे जलाया करता।

संध्या समय पंडितजी कचहरी से लौटे, तो उनका दिल बहुत उदास था। मगर विद्या का खिला हुआ चेहरा देखकर उनका मुँह भी चमकने लगा, जैसे जलता हुआ दीपक बुझे हुए दिए को जला देता है। मुस्कराकर बोले—रसोइया तो नहीं गया?

विद्या—नहीं।

प्रभु०—पानी भरनेवाला आया था?

विद्या—हां। मुहल्लेवालों ने फ़ैसला कर दिया कि जब वह चला गया है, तो अब झगड़े की ज़रूरत नहीं।

प्रभु०—और तुम्हारी सखी-सहेलियों का क्या हाल है?

विद्या—आज तो सभी हँस-हँसकर मिलती थीं। कल की नफ़रत नाम को नही। कहती हैं, सुबह का भूला शाम को घर आ जाय, तो उसे भूला नहीं कहते।

पंडितजी के दिल पर तीर-सा लगा, मगर यह बात उन्होंनें विद्या पर प्रकट न होने दी। फोड़े के अंदर पीप थी, मगर घाव ऊपर से भर चुका था। घाव की यह स्वास्थ्य-सूचक दशा कितनी हानिकारक है, कैसी भयानक! यों साधारण आदमी शायद धोका खा जाय, मगर वैद्य की दृष्टि में यह स्वास्थ्य नहीं, मृत्यु का निमंत्रण है।

दो-तीन दिन बाद पंडितजी साँदले गए। बिसाखी वहां भी न था। पंडितजी के दिल पर दूसरा चरका लगा। सोचने लगे, कहां चला गया? उसका तो कोई ठौर-ठिकाना भी नहीं। आदमी बाहर से निराश होता है, तो घर को दौड़ता है। वहां जाकर उसे वही सुख मिलता है, जो बालक को मा की गोद में। बिसाखी घर भी न गया। यह निराशा न थी, निराशा की पराकाष्ठा थी। और इसका मूल-कारण पंडितजी का हित-चिंतन था, वरना ग़रीब आदमी अपना घर सहज में नहीं छोड़ता। पंडितजी सिर झुकाकर शहर को लौट गए। मगर उस दिन के बाद से अछूतोद्धार के काम में और भी तन्मय हो गए, जैसे कोई तपस्वी एक बार भूल करके अपने शरीर और आत्मा की सारी शक्तियाँ आत्म-संयम को अर्पण कर दे।

[६]

उधर बिसाखी भूखों मरता था, और अपने प्रारब्ध को रोता था। कभी यहां नौकरी करता, कभी वहां; मगर कुछ ही दिनों बाद जवाब मिल जाता। तदबीर रूठी हुई तक़दीर को मनाने का प्रयत्न करती थी; मगर तक़दीर किसी हृदयहीन महाजन की तरह सीधे मुँह बात न करती थी। यहां तक कि कई-कई दिन बीत जाते, और बिसाखी को खाना भी नसीब न होता। ये दुनिया के धक्के न थे, भाग्य के धक्के थे। उसकी कौन सहायता करता? कौन उसकी बाह पकड़ता? वह अनाथ था, ग़रीब था, और सबसे बढ़कर यह कि मेघ-बाप का बेटा था। हारकर उसने वज़ीराबाद स्टेशन पर कुली का काम शुरू कर दिया।

दोपहर का समय था। बिसाखी एक लाला का असबाब स्यालकोट की गाड़ी में रख रहा था। सहसा एक बूढ़ेनेमेघ ने उसे देखा, और आश्चर्य से कहा—अरे कौन, बिसाखी?

बिसाखी ने चौंकर सिर उठाया, बूढ़े हाड़ीमल की तरफ़ देखा, और तब उछलकर उसके निकट आ गया। हाड़ीमल ने उसे गले से लगा लिया, और प्यार से कहा—बेटा बिसाखी, तू यहाँ कब से है?

बिसाखी—कोई छ महीने से। कहिए, गाँव में तो कुसल है न?

हाड़ी०—गाँव में कुसल कैसी? पंडितजी मुशकिल से बचेंगे।

बिसाखी के मुँह का रंग उड़ गया, जैसे किसी आत्मीय की मौत का समाचार सुन लिया हो। चौंककर बोला—क्या बीमार हो गए?

हाड़ी०—बीमार तो नहीं हुए। साँदले से आ रहे थे, राह में साइकिल एक गाड़ी से टकरा गई। कुचले गए। डॉक्टराखने में पड़े हैं।

बिसाखी—डॉक्टर क्या कहता है?

हाड़ी०—राम जाने, क्या कहता है? हम लोग दवा नहीं जानते, दुआ जानते हैं। वह भगवान् सुन लेगा, तो बच जाएंगे नहीं तो हमें ऐसा आदमी फिर न मिलेगा।

बिसाखी—आप उन्हें आदमी कहते हैं। वह आदमी नहीं, देवता हैं।

हाड़ी०—इसमें क्या शक है। तो आओ भाई, तुम भी चलो। यहाँ मजूरी क्या करोगे? तुम्हें बहुत याद करते थे।

बिसाखी—चलो, अब यहाँ न रहूँगा।

तीसरे पहर दोनों आदमी अस्पताल, पहुँचे। वहाँ साँदले के आधे से अधिक लोग मौजूद थे। बिसाखी ने सेवा में दिन रात एक कर दिया। उसे खाने पीने की सुध न थी, न सोने का ख़याल। उसे केवल एक ही ख़याल था, वह यह कि पंडितजी बीमार हैं, और यह बीमारी भयानक है। वह दिलो-जान से सेवा करता था। और, यह मुहब्बत केवल बिसाखी ही से संभव थी। गांव के बहुत से लोग वहीं रहते थे। पंडित जी के कई संबंधियोंने इस समय उनकी बात भी नहीं पूछी। वे उनके अपने थे। सांदलेवाले इस तरह तड़पते थे, जैसे उनका अपना आदमी बीमार हो। वे पराए थे। उनको कर्म-धर्म का ज्ञान न था। वे अछूत थे। वे पढे लिखे न थे।

तीन महीने के बाद पंडितजी स्वस्थ हुए, और गाड़ी में बैठकर घर को चले। इस समय विद्या की आँखों में आनंद-

खेलता था। वह बार-बार पति की तरफ़ ताकती और झूमती थी। आज उसका पति अपने घर जा रहा है। आज उसकी आशाओं का चमन लहलहा रहा है।

एकाएक बिसाखी आकर गाड़ी के पास खड़ा हो गया, और बोला—ज़रा ठहर जाइए। बाजा आ ले।

विद्या०—(मुहब्बत से) बाजा कैसा ?

बिसाखी०—हमने मंगवाया है। आपका जलूस निकलेगा।

प्रभु०—यह तुम लोगों को क्या सूझी ? इस धूमधाम की ज़रा भी ज़रूरत न थी। जाओ, जाकर उन्हें रोक दो। नहीं मैं गाड़ी से उतर जाऊँगा।

बिसाखी—पंडितजी ! आपकी आज्ञा सदा मानी है, और सदा मानेंगे। मगर आज तो हमारी ही मरज़ी चलेगी। आज हम खुशी से पागल हो रहे हैं। शायद आपको मालूम न हो, सांदले के सारे लोग आए हैं।

प्रभु०—मगर इस जुलूस की ज़रूरत क्या है ? लोग देखेंगे तो हंसेंगे।

बिसाखी—परमात्मा उन्हें इसी तरह हंसाता रहे ?

प्रभु०—यह तुम लोगों की सरासर ज्यादती है। आख़िर सोचो तो सही।

विद्या०—चलो रहने दो, क्यों रोकते हो ? इन ग़रीबों की यही खुशी है, तो यही सही।

इस समय विद्या को बिसाखी से किए हुए कटु व्यवहार पर

पश्चात्ताप हो रहा था। रह–रहकर दिल में शरमिंदा हो रही थी। थोड़ी देर बाद गाड़ी चली। आगे–आगे बैंड बज रहा था, पीछे सांदले के मेघ भजन गा रहे थे, और सबके पीछे पंडितजी की गाड़ी चल रही थी, जैसे वर वधू को ब्याह कर लाया हो। इस समय उन सहृदय, प्रेमी, सच्चे देहातियों में कितना प्रेम था, कितना उद्‌गार! उनमें बनावट न थी, न दिखावे का भाव। उनमें उच्च कोटी की श्रद्धा थी। यह लोकाचार न था, उनके हार्दिक भाव थे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर विद्या की आँखें खुल गईं। उसने पंडितजी की तरफ देखा, और धीरे धीरे कहा–मुझे माफ़ करना। इन लोगों की पवित्रता, सादगी और श्रद्धा ने मेरे विचार बदल दिए हैं। मैं समझती थीं, ये पतित हैं, इनमें मनुष्यत्व न होगा; हमारे साथ मिलना चाहते हैं, पर इसके अधिकारी नहीं। मगर तुम्हारी बीमारी ने मेरा संदेह मिटा दिया। ये मनुष्यत्व की कसौटी पर पूरे उतरे हैं। हम इसी शहर के रहनेवाले हैं। यहीं पैदा हुए, यहीं पले, यहीं बड़े हुए। यहां हमारे मिलने-जुलनेवालों की कमी नहीं। ब्याह-शादी करें, तो सैकड़ों लोग आकर बधाई दें। मगर तुम्हारी बीमारी में यहां आनेवालो की संख्या इतनी थोड़ी थी कि उसकी कल्पना ही से लज्जा आती है। और, वह सहानुभूति भी वचन-रूप में थी। इने-गिने संबंधियों को छोड़कर एक आदमी भी ऐसा न निकला, जो तुम्हारी सेवा के लिये एक रात भी यहां रह जाता। और, ये आदमी, ये गिरे हुए लोग–इनको अपने काम भूल गए। इनको केवल तुम्हारी चिंता थी। इन्होंने दिन–रात एक कर दिए। इनमें कृतज्ञता का भाव हम हिंदुओं से भी ज्यादा है।

यह सुनकर प्रभुदत्त का पीला मुँह आनंद से लाल हो गया। मुस्कराकर बोले--तुम तो इन लोगों से घृणा करती थीं। अब बताओ, इनमें धर्म है या नहीं ?

विद्या--इनमें धर्म हो या नहीं, लेकिन इनका धर्म सच्चा धर्म है। ये दिखावा नहीं करते, न आगे बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं। मगर समय पर अपनी लाज रख लेते हैं। मैंने इनको भी देखा है, और इनकी स्त्रियों को भी। उनकी सादगी, पवित्रता और धर्मपरायणता ने मेरे मन को मोह लिया है। ये खरे आदमी हैं। अब तुमसे एक प्रार्थना है। मुझे निराश न करना, मुझे बहुत दुःख होगा।

प्रभु०--क्या कहती हो ?

विद्या--बिसाखी को घर बुला लो।

प्रभु०--(मुस्कराकर) मगर वह रसोई में खाना खायगा।

विद्या--अब यह मज़ाक छोड़ो। कहो, स्वीकार किया ? अब मैं उसे अछूत नहीं समझती।

प्रभु०--तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार न करूँगा, तो रहूँगा कहां ?

विद्या--पता नहीं, उस समय मेरी बुद्धि पर कैसा परदा पड़ गया था। वह घटना आज भी याद आती है, तो शरम से सिर नहीं उठता।

प्रभु०--विद्या! आज मेरा शरीर ही स्वस्थ नहीं हुआ, मन भी नीरोग हो गया है। तुमने मुझे खुश कर दिया। जी चाहता है, तुम्हें मुँह-माँगा इनाम दूँ। बोलो क्या लोगी ?

विद्या—जो चाहूँ माँग लूँ?

प्रभु०—हाँ जो चाहो।

विद्या—इन सब भक्तों को अपने मकान पर बुलाकर खाना खिलाओ, ताकि सारे शहर को पता लगे कि हम इनसे घृणा नहीं करते।

प्रभु०—(चौंककर) विद्या! यह तुम क्या कह रही हो! तुम्हारा घर अपवित्र हो जाएगा।

विद्या—नहीं, मेरा घर इन्हीं के चरणों से शुद्ध होगा।

प्रभु०—तुम तो एकदम दूसरे सिरे पर जा पहुँचीं। मुहल्ले के लोग क्या कहेंगे? यही कि पहले पति किरानी हुआ था, अब स्त्री भी क्रिस्टान हो गई।

विद्या—मुझे उनकी ज़रा भी परवा नहीं।

प्रभु०—रसोइया नौकरी छोड़ जायगा।

विद्या छोड़ जाय। मैं खाना आप बाना लूँगी।

प्रभु०—कहार पानी न भरेगा।

विद्या—एक पंप लगवा दो; कहार की ज़रूरत ही न रहेगी।

प्रभु०—और तुम्हारी सखियाँ?

विद्या—उनकी आंखें भी जल्द ही खुल जायँगी। अब तुम बहाने न ढूँढ़ो, दावत के लिए रुपए निकालो।

प्रभु०—जो चाहो, ले लो, तुमसे बाहर थोड़े हूँ। जुर्माना हो गया, अब माफ़ होने की कोई संभावना ही नहीं।

विद्या मुस्कराने लगी।

पाप के पथ पर

[१]

जब मेरा ब्याह हुआ, उस समय मेरी उम्र बारह साल से ज्यादा न थी। मुझे मालूम न था कि ब्याह क्या होता है, न मुझे इस शब्द के अर्थों का बोध था। मगर मैं फिर भी खुश थी। इसलिए नहीं कि मेरा ब्याह हो रहा है, बल्कि इसलिए कि पहनने को सुंदर जेवर और कपड़े मिलेंगे, और खाने को मिठाइयाँ। मेरे लिए यह सौभाग्य ब्याह से भी बढ़कर था। मेरे पाँव ज़मीन पर न पड़ते थे। चारों तरफ़ दौड़ती-फिरती थी, और खिलखिलाकर हँसती थी। मुझे क्या पता था, क्या हो रहा है। समझती थी, कोई तमाशा है, जिसका नाम ब्याह है। कुछ दिनों तक घर में खूब रौनक़ रही, फिर उदासी छा गई, वह दिन आज भी याद आता है, तो सिर चकराने लगता है।

तीसरे पहर का समय था, मैं एक पालकी में बैठी सखीसहे-लियों के गले लगलगकर रो रही थी। इसलिए नहीं कि मुझे रोना आता था, बल्कि इसलिए कि मेरी सखी-सहेलियाँ रोती थीं। मैं उनके रोने का कारण न जानती थी; मगर इतना जानती थी कि इस समय मुझे भी रोना चाहिए, और मैं अपने इस अज्ञात कर्तव्य को अपनी देह और आत्मा की पूरी शक्ति से पूरा कर रही थी। मेरी सहेलियाँ एक-एक करके आती थीं, और मैं उनके गले से लिपट-लिपट कर रोती थी। सबके बाद मेरे पिता आए। उनकी आँखें रो-रोकर लाल हो रही थीं, चेहरा पीला-ज़र्द। उन्होंने मुझे बड़े ज़ोर से गले लगा लिया, और सिसक-सिसक कर रोने लगे। इस समय तक मेरा ख़याल था कि केवल स्त्रियां ही रो रही हैं, अब पता लगा कि पुरुष भी रो रहे हैं। ख़याल आया, ब्याह अच्छी चीज़ नहीं; पहले मिठाई खाने को मिलती है, फिर रोना पड़ता है। मगर अब क्या हो सकता था? मैंने बाप को रोते देखा, तो और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। मेरे बाप ने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा—बेटी, धीरज धरो, मैं तुम्हें जल्द बुलवा लूंगा।

मेरी आंखें खुल गईं। मुझे अब मालूम हुआ कि मैं कहीं जा रही हूँ। कहाँ? किसके साथ? किसके पास? कुछ मालूम न था। मैं अभागिन हूँ, मैंने अपनी मा नहीं देखी। वह मेरी बाल्या-वस्था ही में मर गई थी। मेरा केवल पिता था, आज वह भी बिछुड़ रहा था। पहले मेरी आँखें रोती थीं, अब दिल भी रोने लगा। मैं गहने-कपड़े पहनकर खुश हुई थी। उनकी चमक-दमक देखकर मेरा मन मुग्ध हो गया था। मैं एक-एक वस्तु को देखती थी, और झूमती

थी। मगर क्या मालूम था कि इस अनित्य संसार के ये अनित्य पदार्थ इतने महँगे हैं! मैंने अपने बाप की सजल आँखों से अपनी आँखें मिलाईं, और कहा—मैं ब्याह नहीं करती, मुझे यहीं रख लो।

मेरे स्नेही पिता का मुँह और भी उतर गया। उन्होंने मुझे ज़ोर से कसकर गले लगा लिया, और कहा—दुर पगली! ऐसी बात फिर न कहना, पाप होता है।

मैं रोने लगी। ब्याह से बचने का कोई रास्ता न था। मेरे बाप ने मेरी भुजाएं धीरे से हटाईं, और पीछे हट गए। मैं उनको पकड़ती ही रह गई, मगर वह चले गए। मेरे साथ हमारे घर की कहारिन बैठी थी, उसने मुझसे धीरे से कहा—शांता, चुप करके बैठी रह, नहीं बराती लोग हँसेंगे।

बाजा बजने लगा। कहारों ने पालकी उठाई, और मुझे ले चले। मेरी आखों से आंसुओं की धार बहने लगी। सोचने लगी, पता नहीं, ये लोग मुझे कहां ले जायँगे? किस शहर को? कैसे घर में? वहां अपना कोई न होगा, सभी बेगाने होंगे। सखियां, सहेलियां, संबंधी, किसी का मुँह दिखाई न देगा। वहां क्या करूँगी? किसके साथ खेलूँगी? किससे लड़ूंगी? मेरा लिबास चमकता था, मगर दिल बुझा हुआ था। ब्याह के इस अथाह अंधकार में मेरे सामने एक ही दीपक था, जिसे देखकर कभी-कभी दिल को धीरज मिल जाता था। यह वह कहारिन थी, जो मेरे साथ बैठी मेरे आंसू पोंछ रही थी। इससे पहले मैंने उसे हज़ारों बार देखा था; लेकिन आज-जैसी स्नेहमयी वह कभी न दिखाई दी थी, ठीक वैसी ही, जैसे समुद्र में डूबते हुए अभागे को लकड़ी का तख्ता ही जहाज़ नज़र आता है। थोड़ी देर बाद, जब

आँसुओं का वेग कम हुआ, तो मैंने कहारिन से पूछा—तेरा भी ब्याह हुआ है कहारिन? तेरे कपड़े कहाँ हैं? कहारिन हँसने लगी; मगर मुझे इसका कोई कारण न दिखाई देता था।

[२]

तीन साल बीत गए। अब मैं सयानी थी, पहले-जैसी लड़की न थी। मेरे पति बहुत सुंदर थे; गोरा रंग, रसीली आँखें, बोलते, तो मुँह से फूल झड़ते। उन्हें सारा घर प्यार करता था, और मैं तो उन्हें देखकर पागल हो जाती थी। वह मुझे देखकर मुस्कराया करते थे। इस मुस्कराहट में कितनी मोहिनी थी, कैसी माधुरी, यह याद करके आज भी मुझ पर भावुकता का नशा छा जाता है। मगर हमें दो बातें करने की आज्ञा न थी। वह अभी पढ़ते थे। मुझसे बातें करते, तो परीक्षा में फ़ेल हो जाते। एक ही घर में, एक ही साथ रहते हुए भी, हम एक दूसरे से कितने दूर, कितने परे थे। जैसे पहाड़ी सफ़र में हम एक दूसरे को सामने, बहुत निकट देखते हैं। समझते हैं, पास आ पहुँचे, अब यात्रा सफल हो गई। मगर वह दूरी समाप्त नहीं होती, फ़ासला फिर बढ़ जाता है। यही हालत हमारी थी। हम एक दूसरे को आँखों से देखते थे; पर पास पहुँचकर प्यार-मोहब्बत की दो बातें न कर सकते थे। प्रेमपथ की ये घाटियाँ कितनी लंबी, कैसी पेचदार थीं, जिनका अंत कहीं नज़र न आता था। कई साल गुज़र गए हैं, पर वह यात्रा आज भी वैसी ही अपूर्ण पड़ी है। घाटियाँ सामने हैं; मगर वह कहाँ चले गए? यह सोचती हूँ, तो दिल में जैसे आग सी जलने लगती है।

प्रातःकाल था, मैं अपने पिता के घर बैठी रामायण का वह भाग पढ़ रही थी, जहाँ जनकपुरी के बाग़ में राम और सीता एक दूसरे को पहली बार देखते हैं, और उनके हृदय के भाव बदल जाते हैं। यह प्रसंग कितना सरस, कितना प्रेम-मय, कितना सजीव है, इसे बयान नहीं किया जा सकता। इसे पढ़कर हृदयसागर में आनंद की लहरें उठने लगती हैं, और आदमी किसी दूसरी दुनिया में पहुँच जाता है। मेरे सामने उनका चित्र खिंच गया। मैं अपने सौभाग्य की सराहना करने लगी।

थोड़ी देर में पिताजी अंदर आ गए। उनकी आँखों में आँसू थे, और सारा शरीर काँप रहा था। मैंने यह देखा, तो डर गई। मेरे दिल में बुरे बुरे विचार पैदा हुए। मैं बैठी थी, रामायण छोड़कर खड़ी हो गई। पिताजी ने अपने दोनों हाथ मेरे सिर पर मारे, और ढाढ़ें मारकर कहा—बेटी! तेरा सुहाग लुट गया!

मैं वहीं खड़ी रह गई, जैसे किसी ने मंत्र के ज़ोर से मुझे मिट्टी की मूर्ति बना दिया हो। मेरा सारा खून और खून की सारी गरमी चेहरे पर जमा हो गई; आंखों से आग निकलने लगी। उस समय मुझे मालूम न था कि जागती हूँ या सुपना देख रही हूँ। मुझे पिताजी के शब्दों पर विश्वास न आता था। वह कैसे हृष्ट-पुष्ट थे, कैसे बलिष्ठ। उनके गाल सेब की तरह सुर्ख थे। कुछ ही दिन हुए, जब मैं आई, उस समय बिलकुल भले-चंगे थे। सिर-दर्द की भी शिकायत न थी। एकाएक यह क्या हो गया! कोई बीमारी की चिट्ठी भी तो नहीं आई। सहसा मुझे ख़याल आया, किसी ने झूठ न लिख दिया हो। ज़रूर किसी दुश्मन की शरारत है, डूबता

हुआ आदमी तिनके को भी पकड़ता है। मैंने कहा—कोई पत्र आया है क्या ?

पिताजी ने रोकर कहा— तुम्हारे ससुर का तार आया है, हमारे भाग फूट गए। इस बालेपन में यह संकट !

मैंने धीरज से कहा—किसी की शरारत न हो। एक तार देकर पूछो। शायद झूठ ही हो। इस संसार में सभी कुछ होता है।

मेरे पिताने उसी समय जवाबी तार दिया। जब तक जवाब न आया, मेरे दिल की जो दशा थी, उसका बयान नहीं हो सकता। एक क्षण में मरती थी, दूसरे क्षणमें जीती थी। थोड़ी देर बाद पिताजी डाकख़ाने से तार का जवाब लेकर आ गए। उन्होंने मुँह से कुछ न कहा; मगर मुझे सब कुछ मालूम हो गया।

अब मेरा धीरज जाता रहा। आंखों से आंसू बहने लगे। मैंने हाथों की चूड़ियां तोड़ डालीं, सिर के बाल नोच लिए, और चीख़-चीख़कर रोने लगी। देखते-देखते सारे मोहल्ले की स्त्रियां हमारे यहां जमा हो गईं। वे तरह तरह की बातें करतीं और मुझे तसल्ली देती थीं। कहती थीं, बेटी, धैर्य रक्खो ! यह रोना तो सारी उमर का है। परमात्मा तुझे धीरज दे। मगर मेरा दिल न सँभलता था। सोचती, अब क्या होगा ? यह सारी उमर कैसे बीतेगी ? इस छल-कपट से भरे हुए, पापमय संसार में मेरी रक्षा कौन करेगा ? इस अंधेरी, लंबी राह में मेरी बांह कौन पकड़ेगा ? पिताजी के बाद दुनिया में कोई ऐसा भी तो नहीं, जो खाने को दो रोटियां ही दे दे। भगवान् का यह कैसा अन्याय है, दो बातें भी न कीं और विधवा हो गई। यह व्याह न था, व्याह का स्वांग था; मगर कितना हृदय-विदारक, कैसा निराशा-जनक। अंधेरा चारों ओर था, प्रकाश कहीं भी न था।

कुछ दिनों बाद मैं सुसराल गई मगर अब मेरा वहां क्या था। उनकी एक-एक चीज़ को देखकर रोना आता था। उनके कपड़े उनकी किताबें, उनके रैकट, सब वही थे, एक वही न थे। संध्या-समय उनके घर आने का समय होता, तो आँखें द्वार पर जम जातीं, शायद आ ही रहे हों। मगर मरे हुए आदमी कब लौटे हैं। मेरे दिल में हूक-सी उठती, और आँखें सजल हो जातीं। वह मुझे देखकर मुस-किराना, मुझे सुनाकर दूसरों के साथ बातचीत करना, अब ख्वाब-ख़याल हो गया। कभी इस घर में मुझे सिर-आँखो पर जगह मिलती थी; मगर अब कोई पूछता भी न था। उलटे सब घृणा करते थे। मैं सबकी आँखों का काँटा थी। सास कहती, डायन मेरा चाँद सा बच्चा खा गई; कैसा गोरा-चिट्टा था, देखकर भूक भागती थी। ननद कहती, मेरा भैया मर गया, यह चुड़ैल अभी तक जीती है! इसे मौत भी नहीं आती? क्या जाने इसकी किसी और पर भी नज़र हो। मैं ये हृदय-बेधक ताने सुनती थी, और खून के घूँट पीकर रह जाती थी। मुझे विधाताने जवाब देने के योग्य ही न रक्खा! क्या कहती, क्या न कहती! मैं खुद चाहती थी कि मुझे मौत आ जाए; मगर अभागों को मौत भी नहीं आती। मैं दिन-दिन-भर काम करती थी। इतने परिश्रम से जी खपाकर, जान लगाकर किसी मज़दूर ने भी किसी का काम न किया होगा। मगर फिर भी कोई मुझसे सीधे-मुँह बात न करता था। इसी घर में चार दिन पहले मैंने राज किया था, आज कोई मेरी बात भी न पूछता था। मेरा राज लुट गया था। अब मैं रानी नहीं थी, दासी थी, बल्कि दासियों से भी बुरी। उनको कोई चाहनेवाला तो था। ग़रीब थीं, मगर प्रेम-धन से वंचित नहीं। यहाँ कुछ भी न था। यहाँ तक कि भविष्य के अंधकार में भी सिवा गर्म आँसुओं और ठंडी आहों के और

कुछ न था। रुलानेवाले सभी थे, हँसानेवाला कोई भी न था। यह मेरे पति-देव की मौत न थी, मेरे सुखों की, मेरी आशाओं की—नहीं, मेरे जीवन की मौत थी। मैं दिन-दिन वैसे ही सूखने लगी, जैसे धूप में पानी न मिलने से फूल की टहनी सूख जाती है। हारकर पिताजी को लिखा। वह आकर साथ ले गए। बाहर की जलन मिट गई; मगर दिल की जलन अब भी उसी तरह बाक़ी थी।

[३]

एक दिन पिताजी ने मुझसे कहा—शांता बेटी, मैं आज तुझसे कुछ कहना चाहता हूँ।

मेरा कलेजा धड़कने लगा। समझ गई, ज़रूर कोई ख़ास बात होगी, नहीं तो ऐसी भूमिका न बाँधी जाती। फिर भी मैं साहस करके बोली—आज्ञा कीजिए।

मेरे पिता ने आगे बढ़कर अपनी पगड़ी सिर से उतारी और मेरे पाँव पर रख दी। इसके बाद ठंडी आह भरकर बोले—बेटी, तू अभी नौजवान है। तेरे खाने-पीने के दिन हैं। तेरे हाथों से ब्याह की मेंहदी भी अभी नहीं उतरी। तेरी सहेलियाँ आनंद मनाती हैं, और तू अंदर बैठकर अपने नसीबों को रोती है। विधाता से तेरा सुख देखा न गया! तेरा पति मर गया, तू अब विधवा है! तेरा मुँह देखकर मेरा दिल फट जाता है। तेरा ख़याल

करके मेरी नींद उचाट हो जाती है। भगवान् जानें, हमने पूर्व-जन्म में कौन से पाप किए थे, जिनका यह फल मिल रहा है। निस्सदेह तू बड़ी सुशील, बड़ी सच्चरित्र है। मुझे तुझ पर ज़रा भी संदेह नहीं। मगर कलियुग का ज़माना है। मुझे पुरुषों पर विश्वास नहीं। अच्छे-से-अच्छे आदमी भी प्रलोभनों में आ जाते हैं। सब रँगे हुए स्यार हैं। तू मुझसे प्रतिज्ञा कर कि मेरी मान-मर्यादा तेरे हाथों में सदा सुरक्षित रहेगी।

शब्द साधारण थे; मगर इनका अर्थ साधारण न था। मैंने सिर झुकाकर आत्मशक्ति और आत्मसंयम का अंदाज़ा किया, जैसे कोई कूदने से पहले अपना शरीर तोल रहा हो। सारी उमर सामने थी; कोई सहायक न था। जैसे वह रेतीली यात्रा, जिसमें ज़रा सुसताने को कोई वृक्ष या पानी का कोई तालाब न हो, केवल ऊपर सिर जलानेवाला सूरज हो, और नीचे पाँव झुलसानेवाली आग के अंगारों से भी गर्म रेत। दुनिया के शरीफ़-बदमाश शील और पवित्रता के व्रत को तोड़ने के लिये पग-पग पर मौजूद थे। ऐसी दशा में धर्म-मार्ग पर चलना कितना कठिन है। यह व्रत साधारण व्रत न था। योग का व्रत था, जिसे देखकर बड़े-बड़े वीर, धीर, तपस्वी भी कांप उठते हैं। यहा भी उसी समय, उसी त्याग, उसी इंद्रिय-दमन की ज़रूरत है, जो यति-योगियों का ही हिस्सा है। मैं कहां खड़ी थी, और कहां चढ़ना चाहती थी। उन गगन-भेदी, उत्साहनाशक चोटियों का ख़याल करके मेरा दिल घबरा गया। मगर पिताजी का मुँह देखकर फिर हौसला हुआ, मानो भागती हुई सेना को सहायता पहुँच गई हो। मैंने बड़े श्रद्धा-भाव से पिता की पगड़ी उठाई, और

उनके सिर पर रखकर दृढ़ संकल्प से कहा—मैं मरती मर जाऊँगी, पर आपकी मान-मर्यादा को दाग़ न लगने दूँगी।

ये शब्द सुनकर मेरे पिताजी का चेहरा चमकने लगा, जैसे छाती से बोझ उतर गया हो। थोड़ी देर बाद बोले—मगर दुनिया बड़ी बुरी है।

मैं—हरएक आदमी की दुनिया अपनी-अपनी है। जिसका मन पवित्र है, उसका दुनिया क्या बिगाड़ लेगी। मन दृढ़ हो, तो पाप उसके सामने सिर भी नहीं उठा सकता।

पिता—तुमने मेरा मन संतुष्ट कर दिया। मै घबराया हुआ था, तुमने मुझे शांति दे दी।

मैं—आप ज़रा भी चिंता न करें, अब यह धर्म मेरा है, आपका नहीं।

पिता—परमात्मा तुम्हें आत्मबल दें।

मैं—अगर मेरी आँखें भी ऊपर उठ जायँ, तो गरदन काट लेना।

पिता—परमात्मा वह दिन न दिखाए।

मैं—आपको मेरे कारण कभी शर्मिंदा न होना पड़ेगा।

उन्होंने मेरी तरफ़ इस तरह देखा, जैसे कोई पुजारी अपने उपास्य देवता की तरफ़ वरदान मिल चुकने पर देखता है, और संतुष्ट होकर चले गए। अब मैंने सखीसहेलियों से भी मिलना-जुलना बंद कर दिया। सोचती थी, मेरा उनका रास्ता एक नहीं, तो फिर बहनापा कैसा? वे हँसती हैं, खेलती हैं, पति के प्यार-मुहब्बत की बातें करती हैं, मेरे लिये इनका चिंतन भी पाप है। मैंने अगर इस तरफ़

झाँक भी लिया, तो मौत है; मेरा मन पवित्र न रहेगा। फिर जिस गाँव को जाना न हो, उसका रास्ता पूछने से क्या मतलब? सहेलियाँ कहतीं, तू तो अब बदल ही गई। विधवा हो जाने का यह मतलब थोड़े ही है कि तू कुढ़ कुढ़ कर मर जाय। मैं इन बातों का जवाब न देती थी। ठंडी आह भरती और आँसू पीकर चुप रह जाती।

इसी तरह नेकी और पवित्रता से दो और साल बीत गए। मुझे अपने ऊपर पूरा-पूरा भरोसा था। मन कभी डावाँडोल न होता था। मैं घर का सारा काम-काज आप करती थी; प्रात'काल उठती, सब कमरों में झाड़ू लगाती, फिर स्नान करती, खाना बनाती, भाइयों को खिलाती। जब वे कॉलेज चले जाते, तो बर्तन साफ़ करती और कपड़े धोती। पिताजी बारह बजे भोजन किया करते थे, उनको भोजन कराती, इसके बाद आप खाना खाती, और फिर पावन-कथा रामायण लेकर बैठ जाती। इसे पढ़कर मेरे मन में धर्म, पवित्रता और ईश्वर-भक्ति की ऐसी-ऐसी आनन्दमय भावनाएँ उठती थीं कि क्या कहूँ। आर्य-सभ्यता का यह ग्रथ-रत्न पढ़कर भी कौन अभागा है, जो निहाल न हो जाय। इसकी एक-एक चौपाई मोतियों से तोलने योग्य है। मैंने प्रलोभनों के कितने ही अवसरों पर इस धर्म-दीपक की पुण्यमयी ज्योति के कारण अपनी रक्षा की है। मानव-जीवन के लिये इसमें कैसे अमर, अटल, उच्च आदर्श हैं, जो इस कपटी दुनिया के खोटे रास्तों में कहीं दिखाई नहीं देते। राम, लक्ष्मण, भरत सीता, सब-के-सब भगवान् के प्यारे थे, जिनके लिये इस मर्त्य-लोक में पवित्र प्रेम ही सब कुछ था, उनको और किसी चीज़ की चाह न थी। अब सीता मेरी सखी थी। राम-लक्ष्मण मेरे भाई, वशिष्ठ और विश्वामित्र मेरे गुरु। इन देवताओं के सत्संग में रहते हुए मुझे किसी वासना, किसी नैतिक पतन

का भय न था, जैसे दुर्ग के गिर्द पहरा लगा था, मुझे चोर-डाकुओं का भय न था।

एकाएक मेरे इस जीवन-दुर्ग की दीवारें कांपने लगीं। संध्या का समय था, मैं बैठी तरकारी काट रही थी। इतने में मेरा बड़ा भाई तुलसीदास सामने आकर खड़ा हो गया। इस समय उसका चेहरा कुछ उतरा हुआ था। मैंने पूछा---क्यों, कुछ उदास मामूल होते हो, क्या बात है?

तुलसीदास---नहीं, कुछ भी नहीं।"

मैं---मुझसे छिपाते हो शायद।

तुलसी---यह तुम्हारा भ्रम है, वर्ना बात कुछ भी नहीं।

मैं---तुम्हारे चेहरे का रंग ही कह रहा है कि कोई बात ज़रूर है; पर छिपाने का यत्न कर रहे हो। न कहना हो, न कहो; पर झूठ काहे को बोलते हो।

तुलसी---बाबूजी अंदर हैं, या कहीं बाहर गए हैं?

मैं---घर पर तो नहीं हैं, अभी गए हैं; क्यों?

तुलसी---मैंने एक बड़ी बुरी ख़बर सुनी है; मगर उस पर विश्वास नहीं होता।

मैं---(उत्सुकता से) क्या सुना है?

तुलसी---किसी से कहोगी तो नहीं?

मैं---मैं जाती ही कहाँ हूँ, जो ढँडोरा पीटती फिरूँगी; मेरा संसार यही घर है।

तुलसी---जब से यह बात सुनी है, दिल घबरा रहा है।

मैं---ऐसी बात है?

तुलसी—तुम हैरान रह जाओगी; कहोगी, यह असंभव है।

मैं—अरे कहते क्यों नहीं। हैरान कर दिया तुमने!

तुलसी ने सावधानी से चारो ओर देखा, और धीरे से कहा—सुना है, बाबूजी दूसरा ब्याह कर रहे हैं।

मैं चौंक पड़ी। मेरा हृदय धड़कने लगा। मेरी शांति भंग हो गई। मैंने कुछ देर सोचा, और तब कहा—मेरा ख़याल है, तुमसे किसी ने झूठ कह दिया है। यह कभी नहीं हो सकता। ब्याह करना होता, तो पहले करते। अब इस उमर में क्या ब्याह करेंगे।

तुलसी—पहले मेरा भी यही ख़याल था, मगर अब तो विश्वास हो गया। मैंने सब कुछ सुन लिया है, शांता बहन! मालूम होता है, हमारे बुरे दिन आ गए।

मैं—तुम तो पागल हो। जाओ, अपना काम करो।

तुलसी—जी चाहता है, मोहल्ले-भर के लोगों को जमा करके कहूँ, देखो, इस ईश्वर-भजन की उमर में ब्याह का चाव चढ़ा है। इन्हें समझाइए।

मैं—तुलसी! यह तुम्हारी भूल है। तुमने बाबूजी को आज तक नहीं पहचाना; वह ऐसे आदमी नहीं हैं।

तुलसी—कुछ दिनों के बाद पूछूँगा। अभी ज़रा चुप रहो।

[४]

मगर मैं चुप न रह सकी। रात को पिताजी घर आए, तो मैंने पूछा—पिताजी! एक बात पूछूँ। बुरा तो न मानिएगा?

पिताजी घबरा गए। थोड़ी देर बाद बोले—क्या पूछती हो, पूछो। बुरा मानने की बात न होगी, तो बुरा क्यों मानूँगा।

मैं असमंजस में पड़ गई। पूछूँ या न पूछूँ। ख़याल आया, अगर झूठ हुआ तो इनकी आत्मा को कितना क्लेश होगा। सोचेंगे, मेरी बेटी कैसी ओच्छी है, जो मुझ पर ऐसा संदेह करती है। मैं इनकी दृष्टि में तुच्छ हो जाऊँगी। दिल में आया, न पूछूँ। मगर उनके चेहरे का भाव देखा, तो फिर संदेह हुआ। यह घबरा क्यों गए? इनके चेहरे का वह रंग ही नहीं रहा। मालूम होता है, कुछ-न-कुछ बात ज़रूर है। जी को कड़ा करके पूछा—आप अपना ब्याह कर रहे हैं?

उनके मुँह का रंग और भी उड़ गया, जैसे किसी चोर की चोरी पकडी जाय। घबराकर बोले—नहीं तो। तुमसे किसने कहा?

मैं—देखिए, छिपाने से कुछ न होगा। जो कुछ है, साफ़-साफ़ कह दीजिए। चार दिन पीछे तो सब कुछ आप-से-आप खुल जायगा।

पिताजी—(साहस-पूर्वक) एक बार कह दिया, झूठ है। अब यह उमर क्या ब्याह करने की है। पता नहीं, तुम्हें ऐसी बातों पर विश्वास कैसे आ जाता है। तुमसे किसने कहा?

मैं—काले चोर ने। पर है सच।

पिताजी—कौन कहता है, सच है।

मैं—आपका चेहरा कह रहा है। अब झूठ न बोलिए।

पिताजी खीझकर बोले—अच्छा, सच ही सही। जब करना चाहता हूँ तो ज़रूर करूँगा, तुमको बीच में बोलने का क्या अधिकार है?

मुझे क्रोध चढ़ आया, गरजकर बोली—मुझे अधिकार नहीं, तो और किसको अधिकार है? मैं आपकी बेटी हूँ, मुझे अधिकार है कि आपको इस पाप से बचाऊँ। आपकी उमर साठ साल से भी ज्यादा है। परमात्मा ने संतान भी दी है। घर में विधवा लड़की तपस्या और धर्म का जीवन गुजार रही है, फिर आप व्याह कैसे करेंगे! व्याह करना है, तो तुलसी का करो, और आराम से बैठकर परमात्मा का भजन करो। यह उमर क्या फिर जंजाल में फँसने की है?

पिताजी अवाक् रह गए। एक ही सांस में मैं इतनी कड़ी बातें कह जाऊँगी, उन्हें यह आशा न थी। उन्होंने मेरी तरफ़ एक बार देखा, और सिर झुका लिया। मानो स्वीकार कर लिया कि हां, जो कुछ तुमने कहा, वह सच है। मैंने फिर कहा—मालूम होता है, आपने सोने की लंका को जलाने का निश्चय कर लिया है। अगर यही बात है, तो पहले मुझे सुसराल भेज दो। अपनी आँखों के सामने यह पाप मुझसे कभी न देखा जायगा।

वह अब भी चुप रहे। उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला। मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया कि तुलसी की ख़बर सच है, इसमें ज़रा भी झूठ नहीं। सोचने लगी, अब क्या होगा? भविष्य की चिंता करते ही मेरा हृदय बैठ गया, और आँखें सजल हो गईं। पिताजी ने मेरी तरफ़ देखा, और लज्जा-भाव से कहा—बेटी! तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। अब यह पाप कभी न करूँगा।

मगर यह प्रतिज्ञा मुंह की थी, दिल की नहीं। दो ही महीने बाद पिताजी ने व्याह कर लिया। मेरे दूसरे व्याह से उनको समाज में मुंह दिखाना मुश्किल हो जाता; पर उनके व्याह पर किसी ने दो शब्द

भी न कहे। मुझ पर संकट का पहाड़ टूट पडा। मेरी नई मा, मा न थी, डायन थी। मुझसे ऐसा व्यवहार करती थी, जैसे मैं आदमी नहीं पशु थी। पिताजी यह सब कुछ देखते थे, और चुप रहते थे। उनमें बोलने का साहस न था। अपनी नव-वधू के सामने जाकर उनका मुँह बंद हो जाता था। अब ऐसा मॉलूम होता था, मानो मैं संसार में अकेली हूँ। पहले मा मरी थी, अब बाप भी मर गया। मैं दिन-रात रोती रहती थी, और भगवान् से प्रार्थना करती थी कि किसी तरह यह संकट कटे; मगर संकट कटता न था। राक्षसी मा खुल खेलने लगी। कंबल ज्यों-ज्यों भीगता जाता है, भारी होता जाता है। यहां तक कि मार-पीट भी होने लगी, और बिना किसी दोष के। अब मेरे लिए कोई आश्रय न था। पति मर गया, बाप ने बुढ़ापे में दूसरा ब्याह कर लिया। सोचती थी, क्या करूँ? किधर जाऊँ? चारो तरफ़ निराशा का अँधेरा था, कहीं हलकीसी रोशनी भी दिखाई न देती थी। वैधव्य की इस काली रात में एक बाप ही का सहारा था; अब वह भी न रहा। बहन को भाइयोंसे क्या कुछ सहायता मिल सकती है? जब बाप ही अपना न रहा, तो भाइयों का क्या भरोसा! मेरे सामने अथाह अंधकार था, सफ़र लम्बा था, और साथी-संगी कोई भी न था। मैं हर वक्त परेशान रहने लगी।

[९]

एक दिन की बात है, मैं काम-काज से छुट्टी पाकर बैठी रामायण पढ़ रही थी, इतने में मा ने आकर क्रोध से पूछा—यह क्या पढ़ रही है तू?

मैं—(सहमकर) रामायण है।

मा—रात-दिन रामायण की ही धुन सवार रहती है, या कुछ काम-काज का भी ख़याल रहता है? रामायण पढ़ने से काम तो नहीं हो जायगा?

मैं—काम पूरा करके ही बैठी हूं।

मा—अब कोई और काम बाक़ी नहीं है?

मैं—नहीं।

मा—कितनी जल्दी कह दिया कि नहीं। जी चाहता है, मार-मारकर कचूमर निकाल दूं। वो जो कपड़े पड़े हैं; वह तेरा ख़सम आकर धोएगा?

ख़सम का नाम सुनना था कि मेरी देह में आग लग गई। क्रोध से जीभ बस में नहीं रहती। मैंने रामायण हटा दी, और कहा—ख़बरदार मेरे ख़सम का नाम न लेना! तेरा ख़सम धो देगा, तो धरती न उलट जायगी। मैं तो हर रोज़ धोती ही रहती हूँ।

मा के मुँह का रंग बदल गया। उसे आशा न थी कि मैं ऐसा कड़ा जवाब भी दे सकती हूँ। कड़ककर बोली—मेरा ख़सम तेरा तो कुछ नहीं लगता?

मैं—मेरा जब था, तब था, अब तुम्हारा ही है, मेरा कोई नहीं है। अगर मेरा होता, तो तुम जैसी चंडिका को घर में न ले आता। काम करते करते कमर टूट जाती है, यहां रानी को कुछ पसंद ही नहीं आता।

मा—अरी परमात्मा से डर। नहीं तेरा सब कुछ नष्ट हो जायगा।

मैं—मेरा और क्या नष्ट होगा? जो होना था, हो चुका।

मा—तुझे घर से न निकलवाया, तो कहना।

मैं—यह भी कर देखो। जहां मेहनत-मज़दूरी करूँगी, चार रोटियाँ खा लूँगी। यहाँ कौन-सी राजगद्दी पर बैठी हूँ, जो धौंस देने लगी हो। मेरे हाथ-पाँव सलामत रहें।

रात हुई, पिताजी घर आए। मा की आंखों से आग की चिनगारियां निकल रही थीं। मैं भी डर रही थी कि आज ख़ैर नहीं। पिताजी आते ही अपने कमरे में चले गए। मा भी वहीं थी। पता नहीं, क्या-क्या बातें हुईं। थोड़ी देर बाद बाहर निकले, तो उनकी आंखें आग उगल रही थीं। ऐसी आंखें मैंने आज तक न देखी थीं - मेरा कलेजा थर्रा उठा। पिताजी आते ही बोले—क्यों शांता! यह तू क्या महाभारत मचाने लगी। अब तक मा से झगड़ा होता था, अब मुझे भी गालियां देने लगी। आख़िर तुझे इस घर में रहना है या नहीं?

मैंने कोई जवाब न दिया। सोचती थी, क्या कहूँ। इतने में मा ने आग पर तेल डाल दिया—इसे अब घर में रहने की क्या ज़रूरत है; इसके पर निकल आए हैं। सामने के मकान में जो लड़का रहता है, उसे देख-देखकर हँसती रहती है। कई बार समझाया कि यह लच्छन अच्छे नहीं बेटी, समझ-सोचकर चल; मगर बेटी के मन में भगवान् जाने, क्या समाया है। देख लेना, किसी दिन उसके साथ निकल जायगी; इसे यार का बहुत भरोसा है।

मैं झूठी बात नहीं सह सकती। इस इलज़ाम से मुझे क्रोध चढ़ आया। बोली—यार तुम्हारा होगा; मैं तो उसे भाई समझती हूँ।

मा ने दुहत्थड़ सिर पर मारा, और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। पिताजी के हाथ में लकड़ी थी। उन्होंने मुझे मार-मारकर अधमरा कर दिया। मैं चिल्लाती थी, हाथ जोड़ती थी, कहती थी, अबकी माफ़ कर दो, फिर भूल न होगी। मगर उनके हृदय में दया न थी। कहते थे, तू सिर चढ़ गई है, आज तुझे सबक़ दिए बिना न छोड़ूँगा। यह वही पिताजी थे, जिन्होंने मुझे कभी फूल की छड़ी भी न मारी थी। पर आज..........

मुझे सारी रात नींद न आई। हड्डियाँ दर्द करती थीं। इस समय मुझे अपने मरे हुए स्वामी का ध्यान आया। अगर वह जीते होते, तो मुझे यह दिन देखना नसीब न होता। मगर वह कहां थे? मेरी आंखों से पानी बहने लगा। ख़याल आया, अब इस घर में गुज़ारा न होगा। सख़्ती बढ़ती जायगी, कम न होगी। मेरा ख़याल ठीक निकला। छः महीने तक मैंने, जो कुछ कर सकती थी, किया; मगर मा का राक्षसी स्वभाव न बदल सकी। उलटे रोज़ मार-पीट होने लगी। अन्याय की भी कोई हद होती है। आख़िर मैं सहन न कर सकी। एक रात को ऐसे समय, जब कि मेरे मा-बाप, भाई और पड़ोसी आराम की नींद सो रहे थे, मैंने घर का दरवाज़ा खोला, और बाहर निकल आई। यह वही घर था, जहाँ मैं पैदा हुई, खेलीकूदी, बड़ी हुई, जिसकी एक एक ईंट मेरी सखी थी। आज मैं उससे सदा के लिए बिदा हो रही हूँ। वह आँगन, वह छत, वे कमरे हमेशा के लिए छूट रहे है। मेरे मन में प्रबल इच्छा पैदा हुई कि लौट चलूँ; मगर फिर विचार आया, कहाँ जाऊँगी? वहीं, जहाँ अन्याय का शासन है, जहाँ घर का कठोर संयम है, मगर घर की-सी निश्चितता और मा-बाप का स्नेह नहीं। मैंने ठंडी साँस भरी, और बाहर निकल आई।

चौक में एक ताँगा खड़ा था। मैं उसमें जाकर बैठ गई। ताँगेवाले ने पूछा—कहाँ चलना होगा?

क्या जवाब देती! मुँह से एक भी शब्द न निकला। उस समय ख़याल आया, अगर पृथ्वी फट जाय, तो उसमें समा जाऊँ। मगर पृथ्वी का इतन कोमल-हृदया कहां, कि फट जाती।

रात का समय था। चारों तरफ़ सन्नाटा था। सारा बाज़ार बंद पड़ा था। ताँगेवाले ने फिर पूछा—कहाँ चलना होगा?

मैंने बड़ी कठिनाई से उत्तर दिया—कहीं ले चलो, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।

ताँगेवाले ने मेरी तरफ़ देखा, और सब कुछ समझ लिया। फिर धीरे से बोला—आज तो क़िसमत खुल गई।

मैंने कोई जवाब न दिया और रोने लगी। वह पवित्रता, वह संयम, वह नेकी का जीवन, वह उच्चआदर्श, सब सपना हो गए।

आजकल मै उसी के पास हूँ, और अपना कर्मफल पूरा कर रही हूँ। खुश नहीं हूं, हां जीती ज़रूर हूं।

अपनी इज्ज़त

[१]

कानपुर टुबैको-कम्पनीके मैनेजर मिस्टर एफ़० के० सालविन साहब चिड़चिड़े स्वभावके आदमी थे। जरा-ज़रासी बातपर बिगड़ते थे, और क्लार्कोंको गालियां देने लगते थे। ज़रा कोई ऊँची आवाज़से बोला और सालविन साहबकी आँखें अग्निमय हो गईं। किसीको दफ्तर पहुचनेमें पांच मिनटकी भी देर हुई और आपको ज़हर चढ़ गया। किसीसे कोई साधारण-सी भी भूल हुई और साहबने उसे डांटना शुरू कर दिया— देखो बाबू! क्या तुम अन्धे हो। अगर अब ऐसी भूल हुई, तो सिर तोड़ दूंगा। वह ग़रीब लाख अपनी सफ़ाई पेश करना चाहे, पर साहब कुछ सुनते ही न थे। एक बार आपने एक पुराने बाबूके मुँहपर क़लमदान दे मारा। सारा मुँह लहू-लुहान हो गया। उसे गुस्सा तो बहुत आया, मगर क्या करता? खूनका

घूँट पीकर रह गया। बोलता, तो दस साल की नौकरी क्षण-भरमें चली जाती। यहाँ अस्सी पाता था, दूसरी जगह कोई चालीस भी न देता, घरके लोग भूखों मर जाते। एक बाबूने एक बार लिखनेके बादामी काग़ज़से अपना बूट साफ़ कर लिया, साहबने पांच रुपया जुर्माना कर दिया। माफ़ी मांगने गया, तो कान मलकर बाहर निकाल दिया। रोता हुआ आया और अपनी कुरसीपर बैठकर काम करने लगा। सिर्फ़ बाबू लक्ष्मीनारायण थे, जो साहबके मुँह लगे हुए थे। इसका भी एक कारण था। लक्ष्मीनारायण साहबके गुप्तचर थे। दफ्तरके सब समाचार साहब तक पहुँचाना लक्ष्मीनारायण अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे। इसीसे साहब आपपर खुश थे, बाक़ी किसीसे सीधे मुँह बात भी न करते थे।

इसी ज़मानेमें इस दफ्तरमें एक नये टाइप-बाबू आये, रामगोपाल निगम। बड़े सज्जन आदमी थे, न किसीके लेनेमें, न देनेमें, मगर अपने काममें बड़े चतुर थे। उनकी टाइप की हुई चिट्ठियाँ देखकर साहब खुश हो जाते थे—जितने समयमें, दूसरे दस चिट्ठियां टाइप करते, उतने समयमें रामगोपाल बीस चिट्ठियां टाइप कर लेते थे। और फिर थकना तो जानते ही न थे, जितना काम मिलता, उसे समाप्त करके उठते। मानो आदमी न हों, लोहेकी मशीन हो। उनका हाथ रुकता ही न था, उनका जी ऊबता ही न था। उनके इन सद्‌गुणोंने साहब बहादुरके दिलमें घर कर लिया। चालीस रुपया मासिकपर नौकर रखा था, छै मासके अन्दर-अन्दर अस्सी कर दिए। दफ्तरके लोग हैरान रह गये। परमेश्वर जाने, यह आदमी कौनसा मोहनी-मन्त्र जानता है, जो ऐसे क्रोधीको बसमें कर लिया। इसने तो कभी किसीसे सीधे मुँह बात

भी न की थी, इससे मुस्करा-मुस्कराकर बोलता है, जैसे गुस्सा करना जानता ही नहीं।

[२]

परन्तु रामगोपाल यहाँ खुश न थे। उनके स्वभावमें आत्म सम्मान कूट-कूटकर भरा था। उनसे अपमान सहन न होता था। दफ्तरके दूसरे बाबुओंके साथ बदसुलूकी होते देखकर उनका दिल धड़कने लगता था। प्रायः सोचा करते—मैं कब तक बचा रहूँगा, पता नहीं, किस दिन इज्जत उतार कर रख दे। अपनी दृष्टिमें गिर जाऊंगा, किसीके सामने सिर न उठा सकूंगा। इसकी खुशीका क्या भरोसा? जिस दिन ज़रा भी भूल हो गई, गरजने लगेगा, उस समय ज़रा भी मुरव्वत न करेगा। बिल्लीके गुदगुदे पंजोंके साथ खेल रहा हूं, भगवान जाने, किस समय नुकीले नाखून निकाल ले। रामगोपाल इसी चिन्तामें घुले जाते थे, जैसे लकड़ीको घुन खा रहा हो।

एक दिन दोपहरके समय जब साहब खाना खाने गये, तो लक्ष्मी-नारायणने रामगोपालके पास आकर कहा—आज शहरमें एक बहुत बड़ा जलसा होनेवाला है, चलोगे? हज़ारों आदमी इकट्ठे होंगे। सुना है, कई व्याख्यानदाता बाहरसे आए हैं, उनके व्याख्यान भी होंगे।

रामगोपालने चिट्ठी टाइप करते-करते पूछा—किसका जलसा है?

लक्ष्मीनारायण—यही कांग्रेसवालोंका। चलोगे न?

रामगोपाल—क्या करेंगे जाकर भैया? यह चोचले आज़ाद लोगोंको शोभा देते हैं। नौकरी-पेशा लोगोंके लिए ऐसी बातें सुनना भी

पाप है। किसीने जाकर साहबसे कह दिया, तो कल ही लाल पीले हो जायंगे। क्या कहोगे उस समय? और उनका स्वभाव तो तुम जानते ही हो, ज़रा-ज़रासी बातपर भड़क उठते हैं।

लक्ष्मीनारायण—मगर हम नौकर हैं, गुलाम नहीं हैं। साफ़ कह देंगे, इन बातोंका दफ्तरसे कोई मतलब नहीं। हां, दफ्तरके काममें सुस्ती करें या दफ्तरके समय ऐसी-वैसी बातें करें, तो ज़रूर वे मना कर सकते हैं, मगर यह क्या कि अब किसी जलसेमें भी न जाओ।

रामगोपालने लक्ष्मीनारायणकी तरफ देखा और मुस्कराकर कहा-और जो साहबने घुड़की दी, तो क्या कहोगे, बोलो?

लक्ष्मीनारायण--घुड़की कैसे देंगे, कोई दोष भी हो।

रामगोपाल—मालिक नौकरीको हर समय घुड़की दे सकता है, नौकरका दोष हो या न हो, इससे कोई मतलब नहीं।

लक्ष्मीनारायण--(चिढ़कर) तो नहीं जाओगे? साफ़ क्यों नहीं कहते?

रामगोपाल—कभी न जाऊंगा भैया! और मेरी तो राय है कि तुम्हें भी न जाना चाहिए। जलसेमें गये बिना भोजन न पचेगा, ऐसी तो कोई बात नहीं मालूम होती।

लक्ष्मीनारायण—हम तो ज़रूर जायँगे। तुम साहबके बहुत विश्वास-पात्र हो, न जाओ, हमपर तो उनकी कृपा-दृष्टि नहीं है। हम क्यों न जायँ?

रामगोपाल—नौकरीका मामला है, सोच लो।

लक्ष्मीनारायणने मुस्कराकर कहा—सोच लिया। साहब भगवान नहीं हैं, जिसने मुँह चीरा है, वह खानेको भी देगा।

रामगोपाल—यह तुम्हारी इच्छा, मगर मैंने कई आदमी अपनी ऑखोंसे देखे हैं, जिनका मुँह चीरकर भी भगवान खानेको नहीं देता। कहिए, दिखा दूँ आज ही एक दो ऐसे आदमी।

लक्ष्मीनारायण—तुम जैसे चापलूस लोगोंने ही साहबोंका मिज़ाज बिगाड़ रखा है।

रामगोपाल हँसकर बोले—तुम इन लोगोंका मिजाज ठीक क्यों नहीं कर देते ?

लक्ष्मीनारायण—जब तक तुम जैसे कायर मौजूद हैं, हमें कौन पूछता है।

रामगोपाल—अरे! अब गालियॉ भी देने लगे।

यह कहकर उन्होंनें फिरसे चिट्ठियॉ टाईप करना शुरू कर दिया, लक्ष्मीनारायण निराश होकर लौट गए। थोड़ी देर बाद एक दूसरे बाबू अज़ीज़ दीनने आकर धीरेसे पूछा—क्यों निगम बाबू! यह लक्ष्मीनारायण क्या कहने आये थे ?

रामगोपाल—कहते थे, काग्रेस का जलसा है, चलोगे ?

अज़ीज़—फिर आपने क्या जवाब दिया ?

रामगोपाल—यही कि मै न जाऊँगा।

अज़ीज़—इसकी बातोंमें न आ जाना कहीं। आप इस दफ्तरमें नये आए हैं, इसे नहीं जानते। आदमी काहेको है, नाग है नाग। इसके काटेका मंत्र नहीं है।

रामगोपालने होठों तले मुस्कराकर कहा—सब जनता हूँ भैया! मूर्ख नहीं हूँ

अज़ीज़—इधर तुमको जलसेमें ले जायगा, उधर कल साहबसे जाकर कह देगा।

रामगोपाल—और जो हमीं उसका नाम ले दें, तो फिर होश उड़ जायँ जनाबके। इतना-सा मुँह निकल आये।

अज़ीज़—अरे भाई! यह एक ही काइयां है। आपको फँसा देगा, खुद साफ़ निकल जायगा। आप मुँह देखते रह जायँगे। हम इसकी रग-रगसे वाक़िफ़ हैं आपके साथ कानाफूसी करते देखा, तो हमें शुबहा हुआ कि शायद लासा लगा रहा है।

रामगोपाल—मगर अफ़सोस पंछी निकल गया।

अज़ीज़—झुँझला रहा होगा, बड़ा सफ्फ़ाक है।

[३]

शामके साढ़े पांच बजे रामगोपाल दफ्तरसे निकले और घरको चले। बाज़ारमें पहुँचे, तो सामनेसे स्त्रियोंका जुलूस आता दिखाई दिया। उनके हाथोंमें राष्ट्रीय झंडे थे, और वे कुछ गा रही थीं। रामगोपाल एक तरफ़ हटकर खड़े हो गये। इतने में जुलूस निकट आ गया; रामगोपाल चौंक पडे। जुलूसमें सबके आगे त्रिवेणी थी। उसका झंडा सब से ऊँचा था। गाते समय सब से पहले त्रिवेणी गाती थी, बादमें दूसरी स्त्रियां बोलती थीं। इस समय वह वीर-भावोंकी सजीव मूर्ति मालूम होती थी। उसका खूबसूरत मुखड़ा तमतमा रहा था, आंखें चमक रही थीं, जैसे जुलूसके नेतृत्वके लिए आकाशसे कोई देवी उतर आई

हो। रामगोपालने त्रिवेणीका यह रूप आज तक न देखा था। इस समय वह उनकी देखी-पहचानी अपनी स्त्री मालूम न होती थी। वह मन्त्र-मुग्ध होकर साथ-साथ चलने लगे। उनको अपनी सुध न थी न काल और दिशाका ज्ञान था। वे केवल यह चाहते थे, कि त्रिवेणी आंखोंसे ओझल न हो। वे उसकी तरफ़ टकटकी बांधकर देख रहे थे, और दर्शकोंके प्रवाहमें बहे चले जाते थे। महिलाएँ गाती थीं:—

आओ प्यारे वीरो आओ, देश-धर्मपर बलि-बलि जाओ।
एक साथ सब मिलकर गाओ, प्यारा भारत देश हमारा।
झंडा ऊँचा रहे हमारा।

कैसी पवित्र और जीवनका संचार करनेवाली धुन थी, और कैसे दिलमें उतर जानेवाले ओज-पूर्ण शब्द। रामगोपालकी रग-रगमें बिजलीसी दौड़ गई। उनको ऐसा मालूम हुआ, मानो अब देशका एक एक बच्चा इन देवियोंकी आवाज़पर बलिदान होनेको आगे बढ़ रहा है। उनपर एक अद्भुत नशा-सा छा गया। वे किसी और ही दुनियामें पहुँच गये—सुन्दर सुप्नोंकी उस स्वर्गपुरीमें, जहां आदमी नहीं जाता, आदमीकी कल्पना जाती है। इस समय उन्हें साल्विन साहब जैसे भूल ही गए। वे यह भी भूल गए कि वे नौकर हैं, और इस तरहके जुलूसोंमें निकलना उनके लिए ठीक नहीं है। पिंजरेका पंछी खुले आकाशकी आज़ादियोंके स्वप्न देख रहा था, मगर अभागेको पता न था कि इन सुनहरे स्वप्नोंका जीवनकाल बहुत थोड़ा है।

थोड़ी देर बाद जुलूस श्रद्धानन्द-पार्कमें पहुच गया, और जलसा शुरू हुआ। पार्क खचाखच भरा हुआ था, चारों तरफ़ आदमी-ही-आदमी थे। वेदीपर कोई खद्दरधारी महात्मा खड़े व्याख्यान दे रहे थे।

शोर इतना था कि सिवा उनके, जो स्टेजपर बैठे थे, उनकी आवाज़ और किसीको सुनाई न देती थी, फिर भी लोग हिलनेका नाम न लेते थे। त्रिवेणी स्टेजपर बैठी थी, रामगोपाल जनसमूहमें खड़े थे। दम घुटता था, पसीना छूटता था, खड़ा होना कठिन था, मगर उन्हें इसकी ज़रा भी चिन्ता न थी। वे इस समय ऐसे खुश थे, जैसे स्वर्गका राज्य मिल गया हो। इस आनन्दमय अभिमानका अनुभव इससे पहले उन्हें कभी न हुआ था। इतने में व्याख्यानदाताने हाथ फैलाकर और अपने गलेकी पूरी शक्तिसे चिल्ला कर कहा—भाइयो! अपनी विदेशी टोपियां उतार दो, हम यहां उनकी होली जलायेंगे। कहनेकी देर थी, लोग अपनी विदेशी टोपियां उतार-उतारकर फेंकने लगे। देखते देखते स्टेजपर टोपियोंका अच्छा खासा ढेर लग गया, मगर व्याख्यानदाता सन्तुष्ट न हुए, लोगोंकी तरफ़ देखकर बोले—अभी तो आधी भी नहीं आईं। अब लोगोंने दूसरोंपर हाथ साफ़ करना शुरू किया। जो अपने पास बैठे या खड़े आदमीके सिरपर विदेशी टोपी देखता, वही हाथ बढ़कर उतार लेता। किसी में दम मारनेकी भी मजाल न थी। रामगोपालके पास एक विद्यार्थी खड़ा था, उसकी दृष्टि रामगोपालकी टोपीकी तरफ़ गई! अभी एक सप्ताह गुज़रा, खरीदी थी, अभी रंग भी न बदला था। देश-भक्तिके प्रदर्शनका इससे अच्छा अवसर और कब मिल सकता था, उसने हाथ बढ़ा कर कहा—क्यों भाई साहब! आज्ञा हो, तो उतारकर फेंक दूँ।

रामगोपालकी मानो नींद खुल गई, हिचकिचाकर बोले—अभी हालमें ख़रीदी है।

विद्यार्थी—बड़ी बढ़िया होली जलेगी भाई साहब! हमारी टोपि-

योंके ऐसे भाग्य कहां ? यह पंडित साहब रोज़-रोज़ हमारे शहरमें थोड़े ही आते हैं।

यह कहते कहते उसने रामगोपालकी टोपी उतारकर स्टेजपर फेंक दी। लोगोंने तालियां पीट दीं।

रामगोपालने कहा—यह आपकी ज्यादती है।

विद्यार्थी—आजके लिए सब कुछ माफ है।

रामगोपाल—अब नगे सिर घर कैसे जाऊँगा, इतना तो सोच लिया होता।

विद्यार्थी—हां, यह भूल तो हो गई, ख़याल ही नहीं आया मगर लीजिए! मेरी टोपी हाज़िर है। मैं नंगे-सिर चला जाऊँगा।

यह कहकर उसने जेबसे एक गांधी-टोपी निकाली और रामगोपालके हाथमें दे दी, रामगोपालका मुँह बन्द हो गया। सहसा पीछेसे किसीने हँसकर कहा-निगम बाबू! बधाई हो। भई तुम तो छिपे रुस्तम निकले।

रामगोपालने मुड़कर देखा, तो उनके देवता कूच कर गये-यह बाबू लक्ष्मीनारायण थे।

रामगोपाल समूहसे निकलकर उनके पास चले गये और बोले—यह आपने देखा, कालेजके विद्यार्थी कैसी ज्यादातियां करने लगे। मैं रोकता ही रह गया, जनाबने टोपी उतारके फेंक दी, मानो बाबाका माल हो। क्या करें, इतने लोगोंमें बोलते भी डर लगता है। सब लोग उधर हैं, इधर एक भी नहीं।

अब वे फिर वही कायर, वही दफ्तरके बाबू थे। उनके सामने वही सालविन साहबकी अग्नि-पूर्ण आंखें थीं, वही दफ्तर था, वही वहाके बाबू थे, वही वहांका दासतामय घृणापूर्ण मनोभाव था।

लक्ष्मीनारायणा कटाक्ष करके कहा—मगर आप इधर आ कैसे गये ?

रामगोपाल—बस, मूर्खता हो गई, और क्या कहूं।

लक्ष्मीनारायणाने रामगोपालकी तरफ़ चुभती हुई दृष्टिसे देखा और मुस्कराये। इसका अर्थ यह था कि हम सब कुछ समझते हैं, हमें बातोंमें न उड़ाओ।

रामगोपाल—अब कल छै रुपये खुल जायंगे, और क्या ? दफ्तरमें यह टोपी लेकर चले जायं, तो साहब खड़े खड़े निकलवा दें।

लक्ष्मीनारायण—आपने स्त्रियोंका जुलूस भी देखा या नहीं ? हम तो दंग रह गये। उफ़ कितना जोश था। यही दशा रही, तो पुरुषों के लिए बाहर निकलना मुश्किल हो जायगा।

रामगोपालका कलेजा धड़कने लगा। सोचा इस मूजीको किसीने बता तो नहीं दिया। उसकी तरफ़ देखकर बोले—हां भाई ! यह ज़रूर हमारी नाक काट डालेंगी। कैसा बढ़-बढ़कर गाती हैं, जैसे आज ही स्वराज्य लेंगी।

लक्ष्मीनारायण—आपने वह लड़की भी देखी, जो सबके आगे थी। भाई खूब जोशसे बोलती है। उसकी आवाज़ सुनकर तो मुरदे भी जी उठें।

रामगोपालका मुँह सूख गया।

लक्ष्मीनारायण—सुना है, उसका पति किसी दफ्तरमें नौकर है। तनख्वाह चाहे कम पाता हो, पर साहब है सौभाग्यवान, जो ऐसी स्त्री मिली। एक हमारे घरकी स्त्रियां हैं कि, बाहर निकलें तो पांव ही न उठें, चार पग चलें तो हांपने लगें; और क्या मजाल जो मुँहसे एक शब्द भी निकल जाए।

रामगोपालको विश्वास हो गया, कि यह शोहदा सब कुछ जानता है। उन्हें उसपर रह-रहकर क्रोध आ रहा था। कैसा हृदयहीन, कितना कठोर है, एक बार गलेपर छुरी नहीं फेरता, धीरे-धीरे काटता है, और तड़पनेका तमाशा देख-देखकर खुश होता है। त्रिवेणीसे क्या-क्या मज़ेकी बातें करनेके मंसूबे बाधे थे; सोचा था, चलकर कहेंगे, वाह मेरे जरनैल! तूने तो कमाल कर दिया। सारा शहर तेरी तरफ़ देखता था, और हम तो फूले न समाते थे। मगर लक्ष्मीनारायणकी दो बातोंने सारा गुड़ गोबर कर दिया। वह जोश ही न रहा।

[४]

रामगोपालको रात-भर नींद न आई। सोचते थे, नौकरी छूट गई, तो क्या करूँगा। बेकारीके दिन हैं, जिधर जाओ, जवाब मिलता है, कोई जगह ख़ाली नहीं। तो क्या भूखों मरना होगा? यह ख़याल आते ही उनका दिल सहम जाता था। कभी-कभी ख़याल आता कि यह सब वहम है, लक्ष्मीनारायणको क्या मालूम कि यह मेरी स्त्री है। कोई इतना मशहूर भी तो नहीं कि सारा शहर जानता हो। बाकी रह गया सवाल टोपीका, इसमें मेरा ज़रा भी दोष नहीं। अब अगर कोई

ओहदा किसीके सिरसे ज़बरदस्ती टोपी उतार ले, तो वह क्या कर सकता है, कुछ भी नहीं। साहब पूछेंगे, तो साफ़ कह दूँगा कि इसमें मेरा क्या दोष। मुझे ऐसी बातोंका शौक़ ही नहीं। लेकिन अगर साहबने पूछा कि तुम वहां गये ही क्यों थे, तो फिर क्या जवाब दूँगा? रामगोपाल निरुत्तर हो गये।

रात गुज़र गई। इसी तरह, जिस तरह उस आदमीकी गुज़रती है, जिसका मुक़दमा दूसरे दिन पेश होनेवाला हो, और जिसे जीतनेकी बहुत कम आशा हो। प्रातःकाल जब बाज़ार खुला तो रामगोपालने सबसे पहले जाकर 'क्रिस्टी' टोपी ख़रीदी। त्रिवेणीके शरीरमें आग-सी लग गई, ऐसी आत्मनिर्बलता भी किस कामकी कि हम हाकिमोंकी मरज़ीके गुलाम ही बन जायं। जो वह चाहें, पहनें, जो वह चाहें, खायं। हमें इतना भी अख्तियार नहीं कि अपनी पसन्दका लिबास भी पहन सकें। काम करते हैं, तनख्वाह पाते हैं। कोई मुफ्त थोड़े ही उठा देता है? उधर रामगोपाल सोचते थे, यह करती क्या है? नौकरी छूट गई, तो सारी हेकड़ी भूल जायगी। फिर पूछूँगा, कहो, क्या खाएं? उस समय तो झंडा हाथमें लेकर फूली न समाती थी। अब बोलो, है कोई सहायक, जो हमारी नौकरीका भी प्रबन्ध कर दे? तारीफ़ करनेवाले सभी हैं, रोटियां खिलानेवाला कोई भी नहीं। यह काम तो वे करें, जिनको खाने-पीनेका टोटा न हो। हम ग़रीब आदमी, चार दिन भी बेकार रह जायं, तो भूखों मरने लगें।

नौ-बजेके क़रीब जब आफ़िस पहुंचे, तो उनके चेहरेका रंग ही और था। ऐसा मालूम होता था, कि महीनोंके बीमार हों। कुरसीपर बैठे, तो अस्सी वर्षके बूढ़े की तरह कॉप रहे थे। चिट्ठियां छापने लगे, तो

उँगलियां कहींकी कहीं जा पडती थीं, मगर दस बज गये और कोई बात न हुई। रामगोपालको कुछ धीरज हुआ। ग्यारह बज गये और साहबने फिर भी न बुलाया। रामगोपालका भय कम होने लगा, मगर आँखें अभी तक द्वारकी तरफ़ लगी थीं। कोई चपरासी आता तो काँप उठते कि कहीं साहबने न बुलाया हो। समय इतना धीरे-धीरे चलनेवाला उन्हें आजसे पहले कभी मालूम न हुआ था। दिलमें मिन्नतें मान रहे थे कि अगर आजका दिन कुशलसे बीत जाय, तो अनाथालयको पांच रुपये दान दें; घर लौटते समय कोई साधु-महात्मा मिल जाय, तो उसे खुश कर दें; वह एक पैसा मांगे, हम उसे चवन्नी दे दें। भगवान अबके बचा ले, तो त्रिवेणीको घरसे न निकलने दें, कहें, पहले परिणामका ध्यान कर लो, फिर इस दुर्गम मार्गपर पांव रखना। रामगोपाल इसी उधड़े बुनमें थे कि दीवार घड़ीने बारह बजा दिए। इसके साथ ही साहब मोटरमें बैठकर खाना खाने चले गए। अब रामगोपालने शान्तिकी सांस ली। उनको ऐसा मालूम हुआ, जैसे यह मोटर जमीनसे नहीं सरकी, उनके सीनेसे सरक गई है, जैसे उनके हृदयपर मनो भार पड़ा था, वह उतर गया है। मगर असलमें भार उतरा न था, प्रारब्ध उनके साथ आशा-निराशाका नाटक खेल रहा था। बिल्ली चूहेको मारनेसे पहले कभी पकड़ती है, कभी छोड देती है।

दो बजे साहब खाना खाकर लौटे, तो सबसे पहले रामगोपालकी तलबी हुई। यह कोई नई बात न थी, साहब रामगोपालको दिनमें कई कई बार बुलाया करते थे, मगर आज——सहमे हुए आदमीको रातमें पेड़पर भी भूतका सन्देह होता है। रामगोपालका दिल बैठ गया। जब उठने लगे, तो उनके अन्तःकरणने कहा, इस कमरेसे सदाके लिए जा रहे हो। जब साहबके कमरेमें पहुंचे तो उनके पांव काँप रहे थे।

साहब कोई कागज़ देखनेमें लीन थे, रामगोपाल जाकर चुप-चाप खड़े हो गये, पर उनके दिलमें जो कोलाहल मचा हुआ था, उसे कौन जानता था। इस समय फिर वही ख़याल थे—अनाथालयको पांच रुपया, साधुको चवन्नी, त्रिवेणीको घरसे निकलनेकी मनाही।

एकाएक साहबने सिर उठाकर उनकी तरफ़ देखा। रामगोपालने झुककर सलाम किया और टाइप की हुई चिट्ठियाँ मेज़पर रख दीं। साहबने कुरसीके साथ पीठ लगाकर सिगरेट सुलगाया, और बोले—देखो बाबू! हमारे पास रिपोर्ट पहुंचा है कि तुम बाग़ी लोग है, क्या यह सच है?

तो आख़िर जिस बातका खटका था, वह सच निकली। रामगोपालने अपनी जीभ होटोंपर फेरी, और जवाब दिया—हुजूर! यह बिलकुल ग़लत है।

साहब—ठीक ठीक बोलो, हम झूट नहीं मांगता।

रामगोपाल—जनाब! मैंने जो कुछ कहा है, वह बिलकुल सच है। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूं कि मैं जलसोंमें भी नहीं जाता। लोग अख़बार पढ़ते हैं, मैं अख़बार भी नहीं पढ़ता। घरसे दफ्तर आता हूँ, दफ्तरसे घर चला जाता हूँ। दुनियाँमें क्या हो रहा है, मुझसे इससे कोई मतलब ही नहीं।

साहब—कल क्या हुआ है, यह बोलो।

रामगोपाल का मुंह कानों तक गर्म हो गया, तथापि संभलकर बोले—जनाब! स्त्रियोंका जुलूस जा रहा था। यह बात हमारे देशके लिए एकदम नई थी। मैं भी साथ साथ चला गया। जलसेमें एक

विद्यार्थीने मेरी टोपी उतार कर फेंक दी। हुजूर क्या कहूँ, ज़रा भी बोलता, तो पिट जाता, मन मारकर रह गया। आज सवेरे सबसे पहले टोपी ख़रीदी।

साहबने इसपर विचार करते हुए कहा—हूँ।

रामगोपाल—हुजूर! मैंने आप फेंकी होती, तो नई, क्यों ख़रीदता, छै रुपयेकी चपत है।

यह युक्ति साहबके दिलमें बैठ गई, बोले—तुम यह ठीक बोलता है, मगर क्या यह भी झूट है कि तुम्हारा वाईफ़ जुलूस निकालता है विदेशी माल के बायकाटपर ज़ोर देता है, और सांग गाता है।

रामगोपाल—यह ठीक है, पर उसने मुझसे राय नहीं ली। मैं दफ्तरमें था, वह जुलूस में चली गई। मैं घरपर होता, तो उसे कभी न जाने देता।

साहबने गुर्राकर कहा—तुम झूट बोलता है'

रामगोपाल—हुजूर! यह पहला मौक़ा है, जब मेरी स्त्री किसी जुलूसमें निकलती है। अबके माफ़ी मिल जाय, तो फिर यह भूल कभी न होगी।

साहब—हमें ख़बर न था कि तुम ऐसा ख़तरनाक लोग है, वर्ना इतना जल्दी कभी 'इन्क्रीमेंट' न देता। हमसे बेवकूफ़ी हुआ।

रामगोपालकी आँखोंमें आँसू आ गये, बहुत नम्रतासे बोले—साहब! सच कहता हूँ, अब आपको कभी शिकायता मौका न मिलेगा।

साहब—तुम शैतान है। हमको तुमपर ज़रा भी एतबार नहीं।

[९]

आत्म-सम्मानके सोते हुए वीर-भाव जाग उठे। रामगोपालने सिर उठाकर कहा—मगर मेरा इसमें क्या क़सूर है? आपका नौकर मैं हूँ, मेरी स्त्री नहीं है। वह जो चाहे, करे, आपको बोलनेका कोई अधिकार नहीं है।

साहब चौंक पड़े। एक नौकर और इस तरह बोले! उनकी आंखें क्रोधसे लाल हो गईं। दात पीसकर बोले—तुम कैसे बोलता है?

रामगोपालने परिणामकी ओरसे आंखें बन्द करके जवाब दिया—जैसे आप बोलते हैं, वैसे मैं भी बोलता हूँ। आपने समझा होगा, दफ्तरके दूसरे बाबुओंके समान मैं भी गालियाँ खाकर चुप रहूँगा, पर मैं ऐसा निर्लज्ज़ आदमी नहीं हूँ। मेरे लिए इज्ज़त पहले है, रुपया बादमें। इज्ज़त बेचकर जो रुपया मिले, उसपर धिक्कार है।

साहब—यू डैम! तुम हमारा आगे बोलता है, तुम हमारा गुस्ताख़ी करता है।

रामगोपालकी भौहें तन गईं,—बोले—आप गालियां क्यों देते हैं?

साहब—नानसेंस! हम तुमको डिसमिस कर सकता है।

रामगोपाल—डिसमिस कर सकते हो, पर गालियां नहीं दे सकते।

साहब—हम गाली देगा, तुम क्या कर सकता है, बोलो।

रामगोपालने क्रोधसे कांपते हुए कहा—मैं तुमको ऐसी शिक्षा दे सकता हूँ, जो तुम्हें सारी उमर न भूले, जिससे तुम्हारी आंखें खुल जाएं।

(चीख़कर)—तुम रास्कल है, हम तुमको मारकर बाहर निकाल देगा।

यह कहते-कहते साहब बहादुरने खड़े होकर दोनों हाथोंसे रामगोपालके कान पकड़ लिए, और उनका सिर दीवारके साथ दे मारा साहब थे दुबले-पतले आदमी, जैसे दमेके बीमार होते हैं, इधर रामगोपाल हट्टे-कट्टे पूरे जवान। यह अपमान न सह सके। उनकी आंखें लाल हो गईं। वे ग़रीब थे, पर स्वाभिमानकी दौलतसे ख़ाली न थे। सोचने लगे, नौकरी चली गई, अब इज़्ज़त क्यों जाय? उन्होंने एक क्षण सोचा, और अपना कार्यक्रम निश्चय कर लिया।

दूसरे ही क्षण उन्होंने साहबको धक्का देकर ज़मीनपर गिरा दिया, और आप उनके सीनेपर सवार हो गए। साहब बहादुरको यह आशा न थी। उन्होंने कभी सुपनेमें भी न सोचा था कि कोई हिन्दुस्तानी ऐसा भी कर सकता है। उनको आज तक कायर, झूठे, चापलूस बाबुओंसे वास्ता पड़ा था, आज एक सच्चे स्वाभिमानी सूरमाको देखनेका अवसर मिला। साहब बहादुर अवाक् रह गये, यह उनके लिए नई बात था। उन्होंने रामगोपालकी तरफ़ आश्चर्ययुक्त निराशाकी दृष्टिसे देखा और डर गए। रामगोपालकी आखोंसे चिनगारियां निकल रहीं थीं। साहबने समझ लिया कि इस घड़ी यह नौजवान पागल हो रहा है, जो भी न कर गुजरे, थोड़ा है। माफ़ीके दो शब्द कह देनेसे जान छूट जाती। चपरासीको एक आवाज़ देनेसे वह भागा हुआ अन्दर आ जाता, मगर साहब बहादुर कमज़ोर होनेपर भी साहब बहादुर थे। न

अपनी आंखोंमें गिरना चाहते थे, न दूसरोंकी दृष्टिमें ज़लील होना स्वीकार था। चपरासी इस दीनदशामें पड़ा देखकर क्या कहेंगे? क्या इसके बाद भी वे किसीको मुँह दिखानेके योग्य रह जायँगे? सारा रोब, सारा दबदबा मिट्टीमें मिल जायगा। साहब बहादुरने ज़मीनपर लेटे-लेटे यह सब कुछ सोच लिया, और तब बोले—तुम जानता है, हम कौन है और हम क्या कर सकता है?

रामगोपाल पहले ही झल्लाए हुए थे, यह सुनकर और भी झल्ला गए। उन्होंने साहबकी कनपटीपर पूरे ज़ोरसे एक घूँसा जमाया, और कहा—हम यह कर सकता है, अब तुम बताओ, तुम क्या कर सकते हो?

साहब बहादुरको दिनमें तारे नज़र आ गये। ऐसा तुला हुआ हाथ उनको आज तक न लगा था, सिर चकराने लगा; घबराकर बोले—हम तुमपर कोर्ट में दावा करेगा।

रामगोपालने एक दूसरा घूँसा दूसरी कनपटीपर जड़ दिया, और कहा—बड़ी खुशीसे।

सालविन साहबका सिर भिन्ना गया। वे थोड़ी देर तक आँखें मूँदे इस तरह पड़े रहे, जैसे उनमें प्राण ही न हों। इसके बाद उन्होंने आँखें खोलकर रामगोपालकी तरफ़ देखा, और कराहकर कहा—मिस्टर! क्या तुम हमको मार डालना चाहता है?

रामगोपाल—फिर दोगे गाली?

साहब—हम कमज़ोर आदमी है। अगर तुमने एक भी घूँसा और लगा दिया, तो हम मर जायगा।

रामगोपाल—हम पूछते हैं, तुमने हमें गाली क्यों दी ?

साहब—यह हमारा गलती था।

रामगोपाल—माफ़ी मांगते हो क्या ?

साहब—हां, हम माफ़ी मांगता है। हमसे बेशक गलती हुआ, बहुत बड़ा गलती।

रामगोपाल—फिर दोगे गाली किसीको ?

सायब—नहीं, नहीं, अब हम किसी को भी गाली न देगा। हमको बक्शो।

रामगोपाल साहबके सीनेसे उठ बैठे, और पसीना पोंछने लगे। सालविन साहब भी हॉंपते हुए खड़े हो गए, आर कनपटियां दबाने लगे। जब दर्द कम हुआ, तो हाथ बढ़ाकर बोले—मिस्टर हाथ मिलाओ, तुम आजसे हमारा दोस्त है।

रामगोपालको आश्चर्य हुआ। कोई आदमी मार खाकर भी दोस्त बन सकता है, यह उन्होंने आज तक न सोचा था। साहबने फिर कहा—आओ हाथ मिलायँ। तुम आजसे हमारा दोस्त है।

रामगोपालने सोते हुए आदमीके समान हाथ बढ़ा दिया, साहब ने उसे अपने हाथमें लेकर कहा—हमारा एक दरखास्त है। उसे तुमको मेहरबानी करके मानना होगा।

रामगोपाल—फ़रमाइये !

साहब—यह बात किसीको मालूम न हो, वर्ना हमारा इज्ज़त चला जायगा।

रामगोपालको हँसी आ गई, मगर उसे रोककर बोले—बेफ़िक्र रहिये।

साहब—थैंक यू।

यह कहकर उन्होंने रामगोपालसे फिर हाथ मिलाया। रामगोपालने अपने कपड़े ठीक करते हुए पूछा—तो अब इस्तीफ़ा लिखकर भेज दूं आपके पास?

साहब—नहीं मिस्टर रामगोपाल! जाकर अपना काम करो। तुमने हमें माफ़ किया, हमने तुम्हें माफ़ किया।

रामगोपालको और भी आश्चर्य हुआ, साहबके मुंहकी तरफ़ देखकर बोले—क्या आप मुझे डिसमिस न करेंगे?

साहब—नहीं।

रामगोपाल—क्या आप मुझे गुस्ताख नहीं समझते?

साहब (मुस्कराकर)—बिलकुल नहीं।

रामगोपाल—मगर मैंने आपको......

साहब—देखो मेरे दोस्त! जो आदमी आप अपना इज्तज़ नहीं करता, हम उसे कमीना समझता है, मगर जो लोग अपना इज्जतका परवा करता है, हम भी उसका इज्ज़त करता है, और उसे अच्छा आदमी समझता है।

रामगोपालको नई बात मालूम हुई। जब वे कमरेसे बाहर निकले, तो चपरासियोंने झुककर सलाम किया, और मुस्कराए। उनकी आंखें कह रही थी--आज तुमने इसको आदमी बना दिया।

उन्होंने द्वारके साथ लगकर सब कुछ देख लिया था।

रामगोपाल सीधे अपने कमरेमें जाकर टाईपपर बैठ गये, और चिठियॉ टाईप करने लगे, मगर उनका दिल घर जानेको अधीर हो रहा था; सोचते थे; कब छुट्टी होगी, और कब घर जाकर त्रिवेणीसे इस घटनाका वर्णन करेंगे?

मगर अभी तीन भी न बजे थे।

Printed by Krishna Bihari Vajpai at New Times Printery, Girgaon Bombay, and publishdd by Mr. K. Vora for Vora & Co. Publishers Ltd., Round Building, Kalbadevi Road, Bombay 2

सुदर्शन की और किताबें

[१]

पनघट

सुदर्शन की पंद्रह कहानियां

मूल्य तीन रुपया

[२]

चार कहानियाँ

यह चार कहानियां नहीं, चार उपन्यास हैं।

मूल्य तीन रुपये

[३]

अंगूठीका मुक़दमा

लड़कों के लिए दिलचस्प कहानियां।

मूल्य एक रुपया

[४]

गांधी के साथ सात दिन

लुई फिशर की किताब का अनुवाद।

मूल्य दो रुपये

[५]

दिलके तार

सुदर्शन के गीतों का संग्रह।

छप रहा है